

बिद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

मूल्य : डेढ़ रुपया

×

×

×

प्रथम संस्करण : १९४५

द्वितीय संस्करण : १९४९

मुद्रक

बिद्यामंदिर प्रेस, रानीकटरा, लखनऊ

# निवेदन

( प्रथम संस्करण से )

रहस्यवाद-झायावाद अथवा अन्य वादों की एक लेखक द्वारा विवेचना ने यह कड़ी उपयोगी है कि अनेक विद्वानों के विचार संकलित करके छात्रों और कान्य-प्रेमियों के सामने रखे जायें । प्रस्तुत संग्रह का यही मुख्य उद्देश्य है ।

जिन विद्वानों के विचार यहाँ संकलित हैं, उनके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ ।

( द्वितीय संस्करण के संबंध में )

चार वर्ष बाद इस पुस्तक का नया संस्करण निकल रहा है । इस बार इसमें प्रसाद जी के विचार भी सम्मिलित कर लिए गए हैं और पिछले निबंधों को संचित करके विशेष संगठित कर दिया गया है । अपने इन नए रूप में मुझे विश्वास है कि रहस्यवाद-झायावाद का शुद्ध रूप और ग्राज की कविता की तत्संबंधी विशेषताएँ समझने में इस पुस्तक से पर्याप्त सहायता मिलेगी ।

रानीकटरा, जलनक ]

प्रे० ना० टंडन

## सूची

	पृ०
१. रहस्यवाद और छायावाद—प्रो० सद्गुणशरण खन्ना	५
२. छायावाद में प्रकृति चित्रण -- प्रो० भर्मेन्द्र नन्दाजी	३५
३. आधुनिक कविता में छायावाद--प्रो० नन्ददुलारे बाजपेयी	४५
४. हिंदी कविता में नई धारा--आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	६५
५. रहस्यवाद की विवेचना—डा० श्यामसुंदर दास	७७
६. रहस्यवाद : उसकी व्याख्या—डा० रामकुमार वर्मा	८३
७. छायावाद—भी जयशंकर प्रसाद	९०

### स्फुट हिन्दार —

डा० केसरीनारायण शुक्ल	९४
—प्रो० विनय मोहन शर्मा	९६
—प्रो० नगेंद्र	९६
—प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल	१००
—डा० धीरेंद्र वर्मा	१०२
—प्रेमनारायण टंडन	१०४

## रहस्यवाद और छायावाद

‘छायावाद’ शब्द किसी लंबे इतिहास से दया नहीं है। भारतीय साहित्य शास्त्र के लिए तो एक नितान्त अर्वाचीन शब्द है। अंग्रेजी साहित्य में भी इसका तादृश्य भावनाची शब्द कठिनता से मिलेगा, वैसे पुरातनवादो इसे-वेदों में ही क्यों न ढूँढ़ निकालें।

वस्तु रूप में छाया को भौति अग्राह्य, अरूप, तथा आभा मात्र को पकड़ कर सलप करने यत्न को ‘छायावाद’ कहना चाहिए। किसल-किसल जानेवाली परिस्थितियाँ जब अधिकारी के अनुभव के दर्पण में कौंधती रहती हैं और व्याकुल होकर उन्हें यावत् किंचित किसी न किसी ढंग से, किसी न किसी प्रकार को कथन की गैर में समेटता है तो उसके इस कलम से उतारने की करामात को ‘छायावाद’ कहेंगे और ‘छाया’ को ही बुला-बुना के उतारने के अन्तर्गत इसे ‘छायावादी’।

अंग्रेजी साहित्य में, और यहाँ भी, पहुँचे हुए सतों के अंशों में ही टेढ़े-मेढ़े अधूरे, पर उनके लिए पूरे, जब लेखनी की कोशिशें हैं तो उनमें ‘छाया’ का वह व्यक्त करने का प्रयास ही अंग्रेजी साहित्य में एक शब्द मिस्टीसिज्म मिनता है। असाधारण अनुभूतियाँ साहित्य के इस वर्ग में मिलती हैं। कवियों के गद्य और पद्य दोनों में एक विशेष प्रकार की शैली हुई है। अपनी केवलता ही के कारण उस शैली की यादें बड़ी धूम रही। इसकी सबसे बड़ी विशेषता प्रतीक प्रयोग अत्यन्त प्रचलित थी। वस्तु से अलग केवल इस अभिव्यंजन-चातुर्य

में 'सिंघलिङ्ग' नाम दिया गया। सिंघलिङ्ग छायावाद की भीम व्यापक नहीं है।

भारतीय साहित्य में कबीर तो रहित हूँ मैं चले आ रहे थे, पर रवि दास के संपर्क से इस शैली को विशेष प्रचार से अग्रसरगाई है। इस शैली में अपना निजी आकर्षण था। 'छाया' को भी न देखने वाले केवल इस शैली के अंदर में 'छाया' दिखाने का साहस भरने लगे। इसी प्रकार के लेखकों के अनेक ढंग चंचल निकले; वस्तु बिल्कुल गौण हो गई। अभिव्यक्ति ही सब कुछ समझा जाने लगी और उन्नी को प्रधान रूप मिला। आज दिन 'छायावाद' के नाम से जो कुछ हिंदी में प्रसिद्ध है उसे केवल अभिव्यक्ति चमत्कार ही समझना चाहिए। भारतीय लक्षण-ग्रंथों में अभिव्यक्ति विधान का इतना उदात्त किया गया है कि आज के छायावाद का यदि विश्लेषण किया जाय तो उसके समस्त कण कहीं न-कहीं बिखरे हुए पर सँजोए, मिल जायेंगे। फिर भी छायावाद का आज एक पृथक् रूप बन गया है। वस्तु से उसका कम लगव रह गया है। इसी लिए 'छायावाद' को केवल अभिव्यक्ति-विधान समझना चाहिए, वस्तु की चीज नहीं।

आज तो रहस्यवाद और छायावाद कव्य के पृथक् पृथक् रूप हैं। जहाँ ये दोनों मिल जाते हैं, वहाँ एक नया वर्ग प्रस्तुत हो जाता है। रहस्यवाद का संबंध मीथे वस्तुविधान से रहता है, अभिव्यक्ति-विधान से नहीं। परंतु छायावाद का संबंध केवल अभिव्यक्ति की विचित्रता और दुरुह भावगम्यता से रहता है; वस्तु का लगाव उसका गौण रहता है। इसीलिए आध्यात्मिक रहस्यवाद का, जो बहुधा अच्छी छायावादी कविताओं में वस्तु-रूप से स्वीकृत देखा जाता है प्रत्येक छायावादी कविता में होना आवश्यक नहीं। आज की छायावादी कविता अभिव्यक्ति की अनेकरूपता की ही सबसे बड़ी विशेषता रखती है। वह केवल उक्ति-वैचित्र्य पर टिकी है। अतएव उसका छायावादी विधान सार्थक है। प्रतीकवाद, अन्योक्तिवाद, लक्षणावाद, संकेतवाद,

अरुणवाद, नीहारवाद और न-जाने कितने ऐसे ही यह छायावाद में हँदें जा सकते हैं। पुराने युग में कलौटिनाद, अलकानन्द, शीतिवाद और कुछ अंशों में ध्वनिवाद भी उचित-विध्य के ही रूप समझे जाते थे। कुछ तो आज की छायावादी कविता में भी परित्यक्त रूप में मिलेंगे।

आज की छायावादी कविता अभिव्यञ्जन के समस्त पैवीदे 'वादी' के सहारे आगे बढ़ता है, और साथ-ही-साथ पुराने कविवाद अभिव्यञ्जन के स्वरूपों को पीछे छोड़ती चली जाती है। रस्यवाद को उत्तम अभिव्यञ्जना के लिए प्रताकवाद, अलकानन्द, अरुणवाद, ध्वनिवाद, अथवा समामोक्तिवाद अत्यन्त आवश्यक होने हैं। आवश्यक नष्ट प्रदान करता है कि क्या छायावाद का प्रभाव रस्यवाद कविता के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है? इसके उत्तर में जेबन नदी कहा जा सकता है कि वस्तु कविता की प्राण है। प्राणी कोई भी प्राणी पदम पर प्रकाश में निकल सकता है। अतएव यह मानने हुए कि छायावाद के जामे में रस्यवाद बिल उठता है, यह नदी फिर किंसा जा सकता कि रस्यवादी कविता को छायावादी होना अनिवार्य है। नीचे कुछ ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं, जिनके अभिव्यञ्जन में यह पैवीदयन नहीं है कि उन्हें हम छायावादी उक्तियों वह करें, यद्यपि वस्तु के अनुसार उनमें रस्यवाद का पूर्ण प्रवेश हुआ है। ऐसी पंक्तियाँ उठ रस्यवादी कहलायगी। पुराने कवियों में इसके उदाहरण बहुत मिलेंगे। उदाहरण -

पानी हो तैं हिम भया, दिन तैं गया बिदय ।

जो कुछ था सोई भया, अग कुछ कहा न जाय ॥ कबीर ॥

इन उक्ति में 'अहम्' और 'परम्' को गह्वराना की प्रविष्टा लक्षणा और पूर्ण विश्वास के साथ की गई है। 'दिन' और 'पानी' को नर त एकरूपता को केवल उदाहरण रूप में आरोपित करने का प्रयत्न है। के भीतर अद्वैत का आभास दिया गया है। इन प्रकाश अग के यह में 'अग कुछ कहा न जाय' लिखकर साक्षात्कार किए हुए रस्यवादी

की यथेष्ट अभिव्यंजन-कठिनता की ओर भी संकेत कर दिया है। इस उक्ति में छायावाद की कोई छाया नहीं है, फिर भी रहस्यवाद उपस्थित है।

पुराने कवि का एक दूसरा उदाहरण देखिए—

विगसा कुमुद देखि नमिरेखा ;

भय तहँ श्रोप जहाँ जोइ देखा ।

पावा रूप रूप जस चाहा ;

ससिमुख जनु दरपन होइ राहा ।

नयन जो देखा कैवल भा, निरमल नीर सरीर ;

हँसत जो देखा हंस भा, दमन ज्योति नग हीर । ( जायसी )

इस उक्ति में 'कुमुद', 'ससि', 'कैवल', 'हंस', 'नग', 'हीर' ऐसे जितने शब्द आए हैं, वे सदर्भ की प्रतिष्ठा के लिए हैं। पद्मावती जलाशय में स्नान कर रही है। कवि पद्मावती को परमरूपा का प्रतिरूप समझता ही है, अतएव समय-समय पर और स्थान-स्थान पर वह प्रत्यक्ष के सहारे परोक्ष की ओर संकेत कर दिया करता है। यहाँ भी जलाशय को अखिल विश्व का प्रतिनिधित्व देकर पद्मावती के विराट् रूप में उसे विलास करते हुए दिखाया है। 'ससिमुख' अर्थात् पद्मावती मानो दर्पण है, जिसमें समस्त ( विश्व ) जलाशय उपस्थित है। 'कैवल' ने, 'नीर' ने, 'हंस' ने 'नग' ने और 'हीर' ने ( यह सब विश्व की अनेकरूपता है ) अपना असली रूप पद्मावती के विराट् रूप में पाया। 'अहम्' ब्रह्म में लय पाकर उसी में विलास करने लगा। 'अहं' की माया टूट गई। मायाजन्य भाव यह है कि ऊपर की पंक्तियों में, वस्तु-रूप में रहस्यवाद के जिस रूप को पकड़ा गया है, उसमें छायावाद का छल नहीं है। प्रतिवस्तूमा प्रपंग की आवश्यक और व्यक्त रुढ़ि है। उसमें लाक्षणिकता बहुत कम है। वस्तुओं का परिगणन रूक-परंपरा के भीतर है।

पुराने कवियों में ही नहीं, नए कवियों में भी छायावाद से बचा हुआ, कोरा रहस्यवाद प्रचुर मात्रा में मिलता है—

भरा नयनों में मन में रूप,

किमी छलिया का अमल अनूप ।

जल, थल, मातृ, व्योम में जो छाया है सब ओर,

खोज-खोजकर खो गई मैं, पागल प्रेम विभोर ।

भौंग से भरा हुआ बट कूप,

भरा नयनों में मन में रूप ।

धमनी की तंत्री बजो, तू रहा लगाये कान,

बलिहारी मैं, कौन तू है मेरा जीवन-प्राण ।

खेलता जैसे छाया-धूप,

भरा नयनों में मन में रूप ।—‘प्रसाद’

ऊपर का उदाहरण नितांत स्पष्ट है। उसमें कहीं भी छायावाद की दुरुद्धता नहीं है। ‘अहम्’ ‘ब्रह्म’ की जुस्तजू में परेशान है और वह इसके साथ लुका-छिपी खेलता है। कहीं आत्मीय भाँति की कविता दिखाकर भक्त को उद्विग्न कर देता और वहाँ उसी आत्म-सोझता है। भिलमिल प्रकाश वहाँ से छिन्न जाता है। खोजता खोजता ‘अहम्’ स्वयं ‘अहम्’ नहीं रह जाता —

‘खोज खोजकर खो गई मैं’

और कबीर की यह रहस्यमय भाँति —

‘तू तू’ कहता तू भया मुझमें रही न की’

—चगितार्य हो जाती है। आत्म-खोजकर पूर्ण सत्य की परिस्थिति में ‘अहम्’ में ही ‘ब्रह्म’ समा जाता है। तू में सब कुछ प्रवेश कर जाता है—

चूँद समुद्र समान यह अचरम लगी कहीं :

हेरनहार हिरान, मुझमें आसुरि आसुर मे । ( कबीर )

कहने का अभिप्राय यह कि ऊपरवाली उक्ति में साधक और



साध्य का रहस्यमय एकीकरण का रूप देकर भी प्रसाद ने उसमें छायावाद का प्रश्रय नहीं लिया; वह कोरे रहस्यवाद का ही अन्यथा उदाहरण है। ठीक इसी प्रकार का एक दूसरे कवि का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

हाँ सखि ! आओ बाँह खोल दम ,  
 लगकर गले जुड़ा लें प्राण ;  
 फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में ,  
 हो जावें द्रुत अंतर्धान । ( पंत )

ऊपर की पंक्तियों में रहस्यवाद बहुत स्पष्ट हो नहीं है, क्योंकि प्रसंग में कल्पना के सहारे जिस रूप से कवि चल रहा था उससे रहस्यवाद के लिए विशेष अवकाश ही न था, किंतु “प्रियतम में हो जावें द्रुत अंतर्धान”—इस व्यंजना में रहस्यमय मुकाव स्पष्ट है। इस रहस्यवाद को उक्ति में भी छायावाद का पूर्ण अभाव है।

एक दूसरा कवि अपनी कविता इस प्रकार आरंभ करता है—

कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ? ( 'नवीन' )

यहाँ स्पष्ट ही अव्यक्त के लिए तीव्र पुकार है।

ध्याता ध्येय के लिए तीव्र वितृष्णा के साथ अग्रसर है। वह संसार के श्रद्धेयों के अध्रुव चरण से परेशान है। उक्ति, चिंतना की विशेषता व कारण अध्यात्मवादी न होकर रहस्यवादी हो गई है। परंतु अभिव्यंजन के चलभाव से दूर होकर छायावादी होने से भी बचा है। कवि अन्यत्र कहलाता है—

जोड़ रहा हूँ बाट चाव से नष्ट जनम के होने की ।  
 देखूँ यह माटी की प्रतिमा कब करते हो सोने की ;  
 रोने की घड़ियों का अंतिम क्षण कब आयेगा देखूँ ?  
 कब यह गनुआँ ढीठ पुण्य-पथ पर बढ़ पायेगा देखूँ ?  
 भवंगों में मैं फँसा हुआ हूँ ।  
 मत्तभाव से कसा हुआ हूँ ।

नदियाँ उमड़ रही बरगती ।

कल-लहरों में गसा हुआ हूँ ।

अरे ! किनारा बहुत दूर है प्रिय मेरे भुजदंड धरो ;

भर भर प्यले यौवन-मदिरा के देना अब बंद करो । ('नवीन')

इस उक्ति में पहली चारों पंक्तियों में तो भक्त का 'स्पष्ट' अध्यात्मवाद है । दूसरी चारों पंक्तियों में भी अन्योक्ति के रूप में प्रतीक प्रयोग के महारे वही अध्यात्मवाद का भक्ति-मय रूप और आगे बढ़ाया गया है । परंतु नवी पंक्ति में 'अरे ! किनारा बहुत दूर है' में रहस्यवाद झलकने लगता है । इस उक्ति में भी अभिव्यंजना कहीं भी व्यावावाद तक नहीं पहुँचती ।

नीचे एक और गीत दिया जाता है —

फिर विकल हैं प्राण मेरे !

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी

देख लूँ उस ओर क्या है ?

जा रहे जिस पंथ से युग

कल्प उमका छोर क्या है ?

क्यों मुझे प्राचीर बनकर

आज मेरे श्वास घेरे ?

(महादेवी)

यह व्यक्ति की औत्सुक्यपूर्ण तड़ान है । विश्व के रहस्य को विदीर्ण करने के लिए आत्मा का प्रयाम है । जीवन को ही घेरा समझनेवाला प्राणी पहेली को सुलझाने के लिए श्वासों को भी पीछे छोड़ देने में हिचक नहीं सकता । वह देखता है कि जब तक वह सश्वाम है, तब तक रहस्य विदीर्ण नहीं हो सकता । ऊर्ग को कविता की अंतिम दो पंक्तियों का भाव कभीर ने भी अपनी मरतीवाली धुन में दूसरे प्रकार से कहा है—

नहीं फिर भी ना छानो लाज ..

निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ?

हृथा था जब संध्या-शालोक  
हँस रहे थे तूम पश्चिम ओर,  
निदग-रव बनक मैं नितनोर  
गा रहा था गुण किंतु कठोर !  
रहे तुम नहीं वहाँ भी, शोक !

निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ?

याद है क्या न प्रात की बात ?  
खिले थे जब तुम बनकर फूल,  
भ्रमर बन प्राण ! लगाने धूल  
पास आया मैं चुनके शूल

कुमारों तुमने मेरे गान.....

निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान !

कहाने से जब तुम सुनराज

बना था मैं भी तुझ - करीब

रात - दिन दृष्टि - द्वार उभगीम

बुलाया तुम्हें, ( यही क्या खोल ! )

न आए पाग, गुना नव गान....

निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ?

अभी मैं बना रहा हूँ गीत

अभी मैं एक-एक बिजल पात,

किया करते हो जो दिन-रात ।

बुलाते हो प्रदीप बन बात

भाग्यप्रिय ! होकर नम निरीत\*\*\*

निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान ? ( पंत )

कहाने की कविता में आहवा परमाहवा की निष्ठुरता की दृष्टिगत रहती है । मर्मोर्म अभिमान का आलोचनान्तर देवता है, पर तुमने मर्मोर्म नहीं करने पाता । यह आलोचक निरीत होकर क्षिप्त-चित्त होता है । आहवा की कथा में आहवा कैसा नहीं पाता । भक्त उन बना रहने का विश्वास में संतुलन करता है, जहाँ यह नेदगार्ह उसे दियाई देता है । निरद में तीव्रता प्रदान करने के लिए वे सारे प्रसंग दिनकर हैं, परन्तु फिर भी अभिव्यंजना में कोई पेचीदापन अथवा तात्पर्यमयता की दृष्टता द्वारा नमस्कार उत्पन्न नहीं किया गया । अतएव यही भी आहवावाद नहीं है । यह रहस्यवाद का अनर्थ अन्धा उदाहरण है ।

यह भी देना गया है कि वैयक्त अभिव्यंजना की दृष्टत संवेदनापन के कारण ही कभी-कभी आलोचक किसी कविता को रहस्यवादी कहने लगते हैं, यह शुद्ध भ्रम है । प्रेमा कविताएँ आहवावादी हो

सकती हैं, परंतु रहस्यवाद से उनका कोई संबंध नहीं। नीचे इस प्रकार की कविताओं का उदाहरण दिए जाते हैं—

मादकता-सी तरल हँसी के प्याले में उठती लहरी  
मेरे निश्वासों से उठकर अधर चूमने को ठहरी  
में व्याकुल परिभ-भुकुल में बंदी अलि-सा काँव रहा  
छलक उठा प्याला लहरी में मेरे सुख का माप रहा ।  
सजग सुम सौंदर्य हुआ, हो चपल चली गई मिलने  
लीन हो गई लहर, लगे मेरे ही नख छाती छिलने  
श्यामा का नखदान मनोहर मुक्ताओं से ग्रथित रहा ।  
जीवन के उस पार उड़ाता हँसी खड़ा मैं चकित रहा ।  
तुम अपनी निष्ठुर क्रोड़ा के विभ्रम से, बहकाने से  
सुखी हुए फिर लगे देखने मुझे पथिक पहचाने से  
उस सुख का आनिगन करने कभी भूलकर आ जाना  
मिलन-क्षितिज-तट मधु जलनिधि में मृदु हिलकोर उठा जाना

( 'प्रसाद' )

यह देखा गया है कि नवीन युग के हिंदी-कवियों का कथान छायावाद की ओर अधिक है, कभी-कभी तो उनमें वस्तु निरूपण का पूरा-पूरा अभाव रहता है, केवल छायावाद के उखड़े हुए चित्र सामने रखे जाते हैं। परंतु ऊपर की कविता में चित्रों के रंगीन होने में कोई कसर नहीं है।

वास्तव में परिस्थितियों की समस्त मूर्तिमत्ता छायावाद पर आश्रित है। कहीं-कहीं तो मूर्ति की नग्नता, अभद्र हो जाती यदि छायावाद का सहारा न लिया जाता। समझने की बात यह है कि इस कविता में वस्तु-रूप में रहस्यवाद ग्रहण नहीं किया गया। अतएव यह रहस्यवादी कविता नहीं है। यह कोरा छायावाद है।

वायु के एक ओर से झेले जाने पर जल दूसरी ओर उठेगा ही। इस साधारण-सी बात को सांग-रूपक के घेरे में डालकर जहाँ एक ओर

प्रति का उत्पत्ति वस्तुकार नामने आता है, वहाँ दूसरी ओर अधीरता के धारण नाना छोटी-छोटी उरमाधनाओं की कलमसाहट हृदय की पकड़ानी भी है। 'ध्याने के छुनक डठने' से यह अर्थ लेना कि मुक्तसाहट समाप्त हो गई, "यजग मुन सौंदर्य हुआ" से रौद्ररस उत्पन्न हो गया यह भाव निकालना. 'लीन हो गई लहर' से यह समझना कि मुक्तसाहट समाप्त हो गई, ये नितांत नए भंगे हैं जिन तक पहुँचना संभव हो जाता यदि 'हो चाल चलों भी हैं मिलने'—ने यह प्रयोग के सांख्यिक भावों का स्वर सामने न खड़ा हो जाता। बहुत सी क्रांतिरियों ने बंद की हुई सांख्यिकता अथवा ध्वनि, काव्य के काम की तभी हो सकती है जब उसकी प्रकाश में लानेवाला कटका, चाहे वह कितने सूक्ष्म कीरोर तर का क्यों न हो, बाहर अनुभव होता रहे। इसी लिए रुद्रिगत प्रयोग हृदयसाधकों सुषोष रखने के लिए अधिक उपयोगी है। पाठकों के सामने ये श्रवणिक स्वर में उरस्थित होते हैं।

ऊपर का "चाल चलों भी हैं मिलने" का हम रुद्रि का ही नवीन प्रयोग मानते हैं। आने चलकर "श्यामा का नखदान मनोहर मुक्ताओं ने प्रथम रहा" यानी उक्ति में चंद्रकला का रजनी (श्यामा) रमणी का प्राप्ति नखदान के स्वर में देखना और नखमाला की उभके उर का मौक्तिक माना समझना वहाँ एक ओर शृंगारसाधना का विराट रूप उपस्थित करता है वहाँ "मनोहर मुक्ताओं से अधिन रहा" चाही पंक्ति में प्रेमी के रोकर अपने दानों और औंस की माना बनानेवाले। मूर्ति भी सामने आती है, जिसकी धारकता "लीन हो गई लहर" के बाद ठीक बैठ जाती है।

छायावाद के दृग्दृष्ट उक्तियों में इस प्रकार का अर्थ-भेद हो जाना स्वाभाविक है।

एक दूसरी उक्ति देखिये—

अब न कपोलों पर छाया-मी पड़ती मुख की सुरभित माप  
भुजमूलों में शिथिल वसन की व्यस्त न होनी है अब मार

कंकण कण्ठ रणित नूपुर ये दिलने में छानी पर छा  
मुन्दरित था कलख गीतों में स्वर लय का होना अभिधार

( प्रगाढ़ )

कपेलों पर सुरभिन माप का आकार बनाना जहाँ एक ओर  
चुंबन की क्रिया की ओर एंकेन करता है, वहाँ कपेलों की उज्ज्वलता  
और निर्मलता की ओर भी ध्यान ले जाता है ; छायावाद में जब  
इस प्रकार की अनेकार्थवाची ध्वनियाँ बिना कटप्रगास के उपलब्ध हो  
जाती हैं तो अभिव्यजना को सकलभूत समझना चाहिए ।

दूसरी पंक्ति से प्रगाढ़ और व्यस्त आतिगन्ध का संकेत तो मिल  
जाता है परंतु 'वसन' के आ जाने से भाव-आघात कुछ शिथिल-भा  
हो जाता है, यद्यपि 'शिथिल' को 'वसन' का विशेषण बनाकर उसका  
परिहार किया गया है । ऊपर की पंक्तियाँ छायावाद की हैं, रहस्यवाद  
से उनका कोई सरोकार नहीं ।

ऊपर-जैसा अभिव्यजना-सौंदर्य नीचे की पंक्तियों में भी मिलेगा—

पाकर विशाल कन्न-भार एड़ियाँ धँसतीं

तब नख-ज्योति-मिस, मृदुल अँगुलियों हँसतीं ।

पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,

तब अरुण एड़ियों से सुहास-सा झड़ता ।

( मैथिलीशरण )

मुस्कराने में या तो दंतपंक्तियों की घबलता काँध जाती है या  
होठों की लाली चमक उठती है ; दोनों रूपों को एक-एक करके  
सामने रखकर चमत्कार उत्पन्न किया है । 'नख-ज्योति' घबल होगी  
और अरुण एड़ियों का सुहास्य लाल होगा । सहज में हम जान लेते  
हैं कि सीता जी के बाल लंबे और घने हैं । चाल में गजगामिनी  
को ठसक है । अँगुलियाँ कोमल हैं, नख चमक रहे हैं और एड़ियाँ  
अरुण हैं । इस उक्ति में भी रहस्यवाद ढूँढ़ना भ्रम है ।

एक और कविता देखिए—

आज सुनसी रिला

आज इतिव पर मौन रहा है

तुनी मौन चिन्ता !

मोनी का जल सोने की रज

क्या गिर चण मे

गान्धय गगन मे

पैला मिटा देगा इगको

रजनी का इशान अवेला !

लपु फंदी के कनरय से

ध्वनिमय अनंत अंतर है !

पलजव बुद्बुद शोर गले

सोने का जग छागा है

सूर्य एक भर

रहा मुरभि-उर ;

क्या तुना तम भर न सकेगा

यद रागी का मेला !

मिट्टुम पैली मेव इन्हें है

क्या जीना चण-भर ही !

गोधूली दिन का परिणय भो

तम फी एक लहर ही !

उनी पय मे मिल,

युग - युग प्रतिपत्ता,

मुख ने दुल दुल ने मुख के—

वर अभियापी को केला !

कितने भाषो ने रंग टाली

रानी स्वासे मेरी,



स्मित में नव - प्रभात  
चितवन में संव्या देती फेरी

उर जल - कणमय,  
सुधि रंगोंमय  
देखूँ तो तम बन आता है  
किस क्षण वह अलवेला !

( महादेवी )

इस कविता में विषादवाद, श्रौत्सुक्यवाद, नश्वरवाद, परास्तवाद आदि इसी प्रकार का कोई वाद हो सकता है, जिसे छायावाद ने अपने कोड़ में सजाकर सामने रक्खा है। परंतु वह रहस्यवाद नहीं है। यह कविता भी दार्शनिक छायावाद का अन्धका उदाहरण है। और देखिए—

पछतावे की परछाईं-सी  
तुम भू पर छाई हो कौन ?  
दुर्बलता - सी, अँगड़ाई - सी  
अपराधी-सी भय से मौन, ( पंत )

इस उक्ति में छायावाद कल्पना के नाना रूपों के चित्रित करने में व्यय किया गया है। यहाँ भी वह काँग छायावाद ही है; रहस्यवाद में उसमें कोई सरोकार नहीं।

आगे जो पद उद्धृत किया जाता है, उसका विषय दार्शनिक आर्य्य है; परन्तु काव्य-वस्तु रहस्यवाद नहीं। चितनाविवाद और दर्शनवाद रहस्यवाद नहीं होते।

पलकों . उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा  
फूँ . उठना शून्य में मेरा हृदय उच्छ्वास मेरा  
हूँ देने जाऊँ कहीं मैं श्रॉय में आलोक फीका  
देग लज्जाने लगे हैं जो आ है भाग जी का  
उम्र जग ने कोप-पूरित व्यंग को दिल खोल यदना

और जग के राग में इन आँसुओं को बोल कहता  
पागलों के स्वप्न में उड़ चंद्र-मंडल आज घेरा ।  
पंख झोले उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा ॥

( उदयशंकर भट्ट )

चित्तना को विश्व की बहुत-सी समस्याएँ उकमा सकती हैं । नाना प्रकार के वाद उसे सजग कर सकते हैं, परंतु परोक्ष की रसभरी भाँकी उपस्थित करना, निस्सीम को ससीम बनाना, यह कोई दार्शनिक प्रत्यय नहीं है । यह तो अरून को निरूपित करने का सरूप का प्रयास है, जिसकी प्रेरणा में समूचे हृदय की छलकती हुई वासना रहती है । केवल यह साधना जब कविता-वस्तु-रूप में पकड़ती है, तब रहस्यवाद की अवतारणा होती है । ऊपर दी हुई 'भट्टजी' की सुंदर दार्शनिक छायावाद की कविता इस युग की चित्तना-संबंधी अच्छी कृति है, परंतु वह रहस्यवादी कविता नहीं है ।

कोरे 'छायावाद' के चित्र उपस्थित करनेवालों में भी वर्तमान कवियों में जयशंकर 'प्रसाद' अच्छे सफल हुए हैं । अन्यत्र इसके उदाहरण दिए जा चुके हैं । एक और उदाहरण देकर इनके प्रसंग की व्याख्या की जायगी—

अगरु-धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हों इन अलकों से  
मादकता लाली के डोरे इधर फँसे हों पलकों से  
व्याकुल बिजली-सी तम मचली आर्द्र-हृदय वनमाला से  
आँसू बरना से उलझे हों, अघर प्रेम के प्याला से  
इस उदास मन की अभिलाषा अँटकी रहे प्रलोभन से  
व्याकुलता सी-सी बल खाकर उलझ रही हों जी-न से  
छवि-प्रकाश-किरणें उगझी हों जीवन के भविष्य तम से  
ये लायेंगी रंग सुनालित होने दो कंपन सम से  
इस आकुल जीवन की घड़ियाँ इन निष्ठुर आघातों से  
बजा करें अगणित यंत्रों से सुख-दुख के अनुपातों से

उज्ज्वली सौँसे उलझ रही हो धड़कन से कुछ परिमित हो  
 अनुनय उलझ रहा हो तीखे तिरस्कार से लांछित हो  
 यह दुर्बल दोनता रहे उलझी फिर चाहे ठुकराओ  
 निंद्यता के इन चरणों से, जिसमें तुम भी सुख पाओ  
 ( प्रसाद )

कैशों के लिए 'अगर' से सुगंध, 'श्यामा' से कालापन और  
 'लहरियों' से घुँघरालापन बड़ी सुंदरता से व्यक्त किए गए हैं।  
 'अधर प्रेम के प्याला से' का यह भाव निकालना कि अधर अधर से  
 संलग्न है, दूसरी लक्षणा का निष्कर्ष है। वास्तव में ऊपर की पंक्तियों  
 में प्रेमो की याचना प्रेम के समस्त स्वरूपों में रमण करती है, जिसमें  
 अनुनय भी हो, विनय भी हो, संयोग का सुख भी हो, वियोग की आहें  
 भी, झिझकियाँ भी हों, मनाना भी हो। 'प्रसाद' जी के अतिशक्ति यदि  
 और कोई कलाकार होता और इसी आशय को व्यक्त करने का साहस  
 कान, तो कदाचित् ही अश्लीलता को बरका सकता; और यदि स्वयं  
 'प्रसाद' जी भी मंकेनत्मकता, लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता से काम  
 न लेते और दुरुद्धता की ओर न झुकते, तो उन्हें भी नागरिकता की  
 रक्षा करना कठिन हो जाता। वियोग के समस्त व्यापार को केवल  
 'उज्ज्वली भीमों' में मंकेन कर देना और संयोग की गन्धार्थता को केवल  
 एक शब्द 'नङ्कन' में सुना देना और संयोग के बाद वियोग और  
 वियोग के बाद संयोग का क्रम केवल 'इस उदास मन की अभिलाषा  
 अदृष्टी रहे प्रसादन में' अर्थात् आनन्द के दुःख की उदासीनता आगामी  
 क्षण की सुख-आशा में समित रहें।

'प्रति-प्रकृति-चरित्रों उलझते हैं जीवन के भविष्य तम से' अर्थात्  
 शक्ति और की सामने की अवे कन छिर सकती है, इस दुःख का  
 भी प्याल रहे अभिलाषा - 'यज्ञा करें अगमित चरित्रों से सुख-दुःख के  
 अनुमानों से' इन उक्तियों द्वारा हृदय में उबार देना क्या कोई सरल  
 काम है? प्रत्यय-व्यापार की समस्त लीलाओं की जानकारी, उनकी

रुचि का मानसिक ज्ञान और साथ-ही-साथ एकरसात्मकता आतिशय्य से जो ऊँच जानेवाली मानवीय कमजोरी, सभी कुछ इस कृती-कलाकार ने सामने रख दी है। इतना सुन्दर छायावादी उदाहरण कदाचित् ही कहीं देखने को मिले। परन्तु स्मरण रहे, भी कोरा छायावाद है ; रहस्यवाद वस्तु-रूप में स्वीकार किया गया।

कोरो छायावादी उक्तियाँ पुराने कवियों में भी मिलेंगी। अथर्वन समझना चाहिए कि छायावाद नितांत आज की चीन मलिक मुहम्मद जायसी ने एक स्थान पर पद्मावती की वृद्धा का चित्रण करते हुए लिखा है —

“भँवर छपान इस परगटा” (जायसी)

‘भँवर’ से संकेत केवल काले और धुंधराले केशों को ही ओ है वरन् भ्रमर की स्वभाव-अस्थिरता, उसकी परिस्थिति के अवर्तन की सतत भनभनाहट (अर्थात् युवावस्था की अशांति चिरतन शिकायत) और उसकी सतत परिभ्रमणशीलता पुष्परागपान की उत्कंठा (भावों में नए उपकरणों द्वारा विलीन रहने की यौवन की चाह) इन सबको सूचना केवल ‘भँवर’ दे जाता है और ‘छिपने’ से यह स्पष्ट हो जाता है युवावस्था को समस्त उद्दाम भावनाएँ और परिस्थितियाँ, संकेत ऊँच किया गया है, छिप गई हैं।

इसी प्रकार ‘हंस’ से केशों की वर्ण-धवलता को ही सामनाया गया है, वरन् हंस की भाँति वयस्क की समझ से धीरे-धीरे पन रगने की चान, उसके मोता चुगने में वृद्ध के विचारों की धारणा तथा (कवि प्रौढ़ोक्ति का लक्षणा द्वारा क्षीर-नीर-विवेकवाले स्वभाव का संकेत करते हुए) वृद्ध की परिपक्वता और समझ की गंभीरता तक पहुँचा दिया। परन्तु यह भी उक्ति रहस्यवाद की नहीं है, लक्षणा और

बल पर केवल छायावाद खड़ा है ।

छायावाद की मार्गकता बहुत बढ़ जाती है, जब वह नन्द-रूप में रहस्यवाद का अवनत है । छायावाद और रहस्यवाद के मोड़ों के निच द्विदो में—विशेषकर नवीन द्विदो में—काफ़ी मिलने । पुराने कवियों में भी एक-दो उक्तियाँ छायावाद की मिलेंगी—

काहे रे नलिनी, तू कुँभिलानी, तेरे ही नाल मगनर पानी ।  
जल में उत्पति जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास ।  
ना तल तपति न ऊगरि आग, तोर हेत कहूँ कायनि लाग ?  
कहँ कबीर जो उदक-समान, ते नहि मूए हमरे जान ।

( कबीर )

‘अहम् ब्रह्मास्मि’ की परिस्थिति न प्राप्त कर सकने के कारण ही मनुष्य दुःख भोगता है । कबीर ने उसे पा लिया है । मात्स्वकार हो चुका है । पर तद्रूप भावना का यह निच दूसरी आत्माओं को सचेत करने के लिए खींचा गया है ।

“जल में उत्पति जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास” यह उक्ति वैसी है, जैसी कबीर की दूसरी उक्ति —

आदौ गगना अंते गगना, मध्ये गगना भाई  
अथवा—

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी  
फूटा कुंभ जल जनहिं समाना..... ( कबीर )

—रूपकों की पेचीदगी के सहारे छायावाद का प्रथम ऊपर लिया गया है और रहस्यमयी भावना की अभिव्यक्ति की गई है । केवल उक्ति-वैचित्र्य पर आश्रित रहस्यवाद भी कबीर में है । एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

समंदर लागि आगि नदर्यौ जल कोइला भई ।

देखि कबीरा जागि, मंछी रूखा चढ़ गई ॥ ( कबीर )

मानव की सांसारिक परिस्थिति का संकेत समुद्र से करना, इस

दुनियावी मिलानट का संकेत बाहर से आकर समुद्र में मिली हुई नदियों से करना, उद्दीप्त भक्ति भावना—संसार के विषयों को भस्म करनेवाली भावना—को अग्नि द्वारा संकेत करना और तन्मय के लिए ऊपर खिंचे हुई आत्मा की अभिव्यंजना रूप पर चढ़ी हुई मछली से करना—इत्यादि छायावाद के अच्छे चित्र हैं। विषय पूर्ण रूप से रहस्यवाद है।

इसी प्रकार केवल प्रतीक-प्रयोग के बल पर ब्रह्मवाद को, हृदयजगत् की तन्मयता के साथ, उक्ति-वैचित्र्य व समूहिक सौंदर्य द्वारा छायावाद का रूप नीचे के पद में दिया गया है—

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।

सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मचा हाहाकार ;  
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के परी पिछार।  
मृंगी की भिगी करि डारी पारामर के उदर विदार ;  
कनफूँ का निद कामी लूटे लूटे जोगेम करत बिचार।  
हम तो बचने साहय दया से, शब्द-डोर गहि उतरे पार ;  
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो इस ठगनी से रहो हूमियार।

( कबीर )

दांपत्य-रति ने ऊपर के पद को और भी मरस बना दिया है। “शब्द-डोर गहि उतरे पार” में ‘सुरतनाद’ के अभ्यास की ओर एक रुखा-सा संकेत है। पर तद्गुण के मुख से निकली हुई यह रहस्यवाद की वाणी अधिक सरस इसलिए नहीं हो पाई, क्योंकि इसका भुकाव अर्ध-तन्मयता की ओर अधिक है।

वैसे यदि कोई प्रयास करे तो कबीर के कृत्यों और चरित्रात्मियों में कुछ पद छायावाद के सिद्ध प्रमाण, किन्तु निम्न रहस्यवाद है। वर्तमान विषयों में रहस्यवादी छायावाद के संकेत चित्र लुप्त की कवियों के बन पड़े हैं। देश की कवियों में या तो लोग रहस्यवाद है या कोरा छायावाद अथवा वे दोनों बाद नहीं हैं। कवियों

और उनके आलोचकों, दोनों को भ्रम है कि वे इनके प्रवर्तक हैं । कुछ आलोचक तो अलंकार के नवान् प्रयोगों से चमत्कृत होकर उसी को छायावाद कहने लगते हैं । इस संबंध में आगे कहा जायगा । नीचे एक कविता उद्धृत की जाती है—

‘तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल’ गति सुर-सरिता ,  
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कांतकामिनी कविता ।

तुम प्रेम और मैं शांति ।

तुम सुरापान घन अंधकार ;

मैं हूँ मतवाली भ्रांति ।

तुम दिनकर के खर किरण-जाल ,

मैं सरसिज की मुसकान ;

तुम वर्षों के बीते वियोग

मैं हूँ पिछली पहचान ।

तुम योग और मैं सिद्धि ।

तुम हो रागानुग निश्छल तप ,

मैं शुचिता सरल नमृद्धि ।

( निराला )

‘तुम’ और ‘मैं’ के एकीकरण की ओर उतना प्रयास नहीं है, जितना ‘तुम’ और ‘मैं’ की तात्त्विक एकरूपता के सिद्ध करने की ओर है । इन पंक्तियों में द्वैताद्वैत की भावना को काव्य-बद्ध किया गया है । इसी कविता में कवि आगे कहता है—

तुम हो प्रियतम मधुमास

और मैं पिक कल-कूजन तान ।

तुम मदन पंचशर-हस्त

और मैं हूँ मुग्धा अनजान ।

तुम अंबर मैं दिग्वसना

तुम विषकाग मन-पटल श्याम  
 मैं तद्विल्लिका-रचना ॥

तुम रण-तांडव-उन्माद नृत्य  
 मैं युवति मधुर नूपुर-ध्वनि  
 तुम नाद वेद आकार मार  
 मैं कवि-शृंगार-शिरोमणि ॥

तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति  
 तुम कुंद-इंदु-अरविंद शुभ्र  
 तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति

( निगला )

छायावाद के क्रोड़ में रहस्यवाद की वस्तु रूप में प्रतिष्ठा सफल हुई है। ऐसी कविताएँ कम मिलेंगी। एक दूसरी कविता नीचे और दो जाती है—

सखि मैं हूँ अमर मुद्रग भरी !  
 प्रिय के अनंत अनुराग भरी !  
 किमको त्यागूँ किमको माँगू ,  
 हे एक मुझे मधुमय विषमय ;  
 मेरे पद छूते ही होते ,  
 काँटे कलियाँ, प्रस्तर, रसमय !

पालूँ जग का अभिशाप कहीं  
 प्रतिशोभा में पुलकी लहरी ।  
 जिसको पथ-शर्लों का भय हो ,  
 वह खोजे नित निर्जन गह्वर ;  
 प्रिय के संदेशों के वाहक ,  
 मैं सुख-दुःख भेजूँगी भुज भर ;

मेरी लघु-पलकों में छलकी

इस कण-कण में समता बिखरी !



अदमा ने यह भीमभारी ;  
 सोया ने दो पद में लायी ;  
 मेरे का आलेखन—  
 करती राका रन धीरवती !

जग के दागों का भी-नोकर  
 छाँती मेरी छाया गहरी !  
 पद के निचोरे से रज में—  
 नभ का चढ़ छायागर्भ लया  
 श्वासों से फिर आती बदली  
 चितवन करती पतझर धार !  
 जग में मरु में भरने लानी  
 दुःख से रोती जीवन-गमगी !

( महादेवी )

ऊपर की कविता में 'अदम' के विस्तार का रूप यत्र-तत्र स्पष्ट दिवाई देता है। 'अदम' का रहस्यमय प्रभाव काव्य का प्राण है—

मेरे पद छूते ही होते,  
 काँटे कलियाँ, प्रस्तर रसमय !

संध्या ने पद में लाली भर दी, राका ने अंगों का आलेखन किया, श्वासों से बदला फिर आती है, चितवन पतझर करती है, दुःख दि छायावादी अभिव्यंजनाओं में रहस्यवाद की ही प्रतिष्ठा दिलाई देती है। पं० माधनलालजी की कृतियों में छायावादी रहस्यवाद के बड़े सुंदर और मुलभे हुए उदाहरण उपस्थित हैं—

अगणित बार समाकर भी  
 छोटा हूँ यह संताप हुआ।

कदाचित् यह उन्हीं की पंक्ति है।

नवीन कवियों में कभी-कभी अभिव्यंजना के चमत्कार, या यों कहिए कि छायावाद का मोह इतना अधिक हो जाता है कि वस्तु

का है परन्तु जिन्हां दुष्टा रक्षकवाद प्राप्त हुआ वहाँ नहीं हो पाया ।  
 साधारण की भूलभ्रमों से यह समझना पर अधिकतर प्रतीत  
 होता है । अतएव विवेचना का अभाव रहता है । साधारण का  
 प्रभाव नहीं एक ही रक्षकवाद को अलग और प्रभावमान बना देता  
 है, वही दूसरी ओर साधारण की कविशक्ति को विवेचन भी कर  
 देती है । आज के कवियों में भी कुछ ऐसे भ्रष्ट कलाकार हैं, जिनमें  
 रक्षकवाद और साधारण का बहुत ही जगमगावट मिलेगा ।  
 नकारार्थ —

निर्भर कोन बहुत कम पाकर विवेचना का दुरायता किया ।

खोस रहा है अपने धरा में, अपने ही चरणों में गिरना ।

( प्रवाद )

जिस प्रभाव में मैं खिंची आई हूँ, वही रक्षकवाद को मात्ररूप  
 में प्रत्यक्ष रूपे काव्य-बन्ध करने का कवि का कोई अभिप्राय नहीं था,  
 फिर भी वेदाङ्ग के अद्वैतवाद की सुन्दर भावमय अभिव्यञ्जना का  
 मन में उभार कर की पत्थियों की पदच में अनायास आ गया है और  
 माय-ही-माय साधारण का उजम का भी यम पड़ा है ।

आति की प्राप्ति का इच्छुक, 'ग्रन्थ' की नलाका में, आत्मा न-जाने  
 क्यों-क्यों माग माग घूमता है, किन्तु कष्ट भेलता है, अपने से बाहर  
 उन्नत की अगति प्राप्ति के लिए दौड़ा करता है ।

परन्तु उन्ने सामाजिक आति नवी मिलती है, जब यह अपने को  
 'अद्वैत ज्ञान' समझकर मागी पूजा-अर्चना और भद्रा का केंद्र  
 बनाता है और अपने ही चरणों पर भक्ति के फूल गिरे देता है ।  
 'मादृश' की परिधिपति हो जाती है । इसी मानस का निर्भर के  
 प्रतीक द्वारा बड़े अन्ते दंग से व्यक्त किया गया है । 'बहुत बल  
 खाना', 'विलम्बता', 'दुर्गमता', 'खोजना', 'अपने चरणों में गिरना',  
 ये समस्त क्रियाएँ साक्षात् अर्थ का संकेत करते हुए

एक समूची रहस्यमयी परिस्थिति व्यंग्य करती है। वही धन्यार्थ इन पंक्तियों का प्राण है।

छायावाद के रूप को और अधिक समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसका और अलंकारवाद का स्थूल भेद समझ लें। नीचे कुछ ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं, जहाँ न छायावाद है, और न रहस्यवाद—

शांत, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल  
अपलक अनंत, नीरव भूतल  
सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल,  
तन्वंगी गंगा ग्रीष्म-निरल  
लेटी है शांत, क्लृप्त, निश्चल।  
तापस-चाला-सी गंगा कल  
शशि-मुख से दीपित मृदु करतल  
लहरें उर पर कोमल कुंतल  
गोरे अंगों पर विहर-सिहर,  
लहराता तार-तरल सुंदर  
चंचल अंचल-सा नीलावर  
साढ़ी की मिकुड़न-सी जिस पर

शशि की रेशमी-विभा से भर  
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर। (पंत)

ऊपर की कविता में छायावाद नहीं है; रहस्यवाद भी नहीं है। केवल दृश्य की मूर्निमत्ता बड़ी स्पष्टता और विद्वता से खड़ी की गई है। कवि का पर्यवेक्षण बड़ा सूक्ष्म है और वह स्वरूप को जैसे का तैसा चित्रित कर देने में बड़ा गडु है। उपमाओं में अधिकतर नवीनता है और उनका भावसादृश्य दोनों मिलकर चित्र के हृदय-प्रवेश में बड़ी महायता देते हैं। इसी प्रकार एक दूसरे कुशल कलाकार का चित्र देखिए—

1974 1975 1976 1977

നാലാം പേജ്

५५१.५६      ५७१      ५७१ ।

କ୍ଷମା କର । ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

207 - 2549 - 2745 - 281      2999911

ਰ ਖਰੀ ਮੇ ਗਗ ਭਗੰਦ ਰਿਏ.

प्रश्नों में गणना बंद करने—

ਨਾ ਨਾਨਕ ਹਰੁ ਏਕੰ ਹੈ ਕਾਗੀ !

ਜੀ ਜੀ ਕੇ ਮੇਰੇ ਵਿਚਨ ਦੀ ! ( ਸ਼ਬਦ )

मशीन की ज्वेल को 'डिप' में गाढ़ मातृ-रस का द्रवना मूँछिमान  
की-र मातृ-मर्दान-मर्दान का देखा में जाता है। नेत्र-मोजक-रस  
में मातृ-मर्दान की देखा है। यह दुष्ट-मर्दान का मर्दान—

• ਸ੍ਰ. ਭਖ ਸੁਰ ਮਾਂ ਦੇ ਜਾਨੀ !

“श्रीलोक में भरे विद्यागरी !”

—इन संविधियों ने हमारे मानवता का प्रकृति के दृष्ट निरर्णय दे-  
खाप बहुत संभव दिखाना है और भिन्न को समझना के लिए  
और अधिक यत्न करना देता है। ३. 'प्रसाद' ने स्वाभाविक को  
नहीं आनाया। बहुत कम में तो स्वयं प्रतीति-वर्णन है, अतएव  
स्वभाविक का कोई भ्रम नहीं रहता।

एक और कविता आगे दी जाती है। बिना ध्यान से पढ़े हुए लोग इसे रहस्यवादी कविता कहने की भांति कर सकते हैं। एम्. डब्ल्यू. आर्लोव्सक ने ऐसा किया भी है। कुछ शब्द ऐसे आ गये हैं, जिनसे यदि उपमा के रूप में न लेकर ध्वन्यात्मक समझा जाय, तो यह भूल हो सकती है।

चढ़ चल, चढ़ चल, थक मत रे बलि बध के सुंदर जीव,  
 सच कठोर शिखर के ऊपर है मंदिर की नींव  
 बड़े-बड़े ये शिलाखंड मग रोके पड़े अचेत ।  
 इन्हें लौंघ तू यदि जाना है तुझे मरण के हेत ;  
 ऊपर अगम शिखर के ऊपर मचा मृत्यु का रास ;  
 नीचे उपत्यका में, जीवन पंकिल का है त्रास ।  
 चढ़ चल, चढ़ चल थक मत रे तू बलिदानों के पुंज,  
 देख कहीं न लुभावे तुझको यह जीवन की कुंज ;  
 मधुर मृत्यु का मृत्यु देख तू देने लग जा ताल  
 अपना सीस पिरोकर कर दे पूरी मा की माल,  
 है जीवन अनित्य, कट जाने दे तू मोहक बंध,  
 कर दे पूरा आत्म-निवेदन का तू आज प्रबंध ।

( नवीन )

कवि की स्पष्ट पुकार देश-सेवा है । बलि-यशु से देश-सेवक की  
 कठिनाई, उसकी तपस्या और बलिदान को व्यक्त किया गया है ।  
 यह कहता है—

“अपना सीस पिरोकर कर दे  
 पूरी मा की माल ।”

यहाँ मा स्पष्ट रूप से भारतमाता के लिए कहा गया है । अतएव  
 जिनने पद भी ऐसे मिलें, जिनके कारण आत्मा के परमात्मा तक  
 आरोहण की कठिनता भासित हो, उन्हें प्रयोग समझकर एक भिटके  
 के साथ नीचे उतार लेना चाहिए और वाच्यार्थवाला सीधा-सादा  
 अर्थ ही ग्रहण करना चाहिए । इस कविता में किसी प्रकार का  
 रक्ष्यवाद नहीं है । केवल देश-प्रेम का उद्घोष किया गया है ।

नीचे की कविता में स्वराजचिन्तन के साथ-साथ भाव-चित्रण की  
 रक्षा की गई है—



मुझको भी इस शुभ्र ज्योति में मज्जित कर लो अपने साथ ।  
 हे सुवर्णमय, तুম मानस में कमल खिलाने हो सुंदर,  
 मेरे मानस में भी उसके बिकसा दो पद-पद्म अमर ।  
 और नहीं तो अपना ही-सा मुझको भी सधा जीवन  
 हे सीने-मग - गामी, दे दो, दिव्य अप्रकट - गुण पावन ।

( पंत )

इस कविता की पुकार सूर्य के प्रति है । वाच्यार्थ का प्रयोजन उसी के लिए है । परंतु स्थान-स्थान पर कुछ ऐसे शब्द आ गए हैं, जिनके कारण एक ध्वन्यार्थ का भी आरोप होता चलता है । उनका विषय भगवान् हो सकता है । अतएव यहाँ पर समासोक्त अलंकार की पुष्टि दिखाई देती है । व्यंग्यार्थ का विषय अध्यात्म है, परन्तु वस्तु-रूप में रहस्यवाद नहीं है । अतएव इस कविता को रहस्यवादी कहना भूल है ।

अभिन्नंजयजना-पक्ष में केवल समासोक्ति का अंचल पकड़ने से कोई कविता ज्ञायावादी नहीं कही जा सकती । ज्ञायावादी कविता की और विशेषताएँ इसमें नहीं हैं । अतएव यह ज्ञायावादी कविता भी नहीं है । वाच्यार्थ और ध्वन्यार्थ दोनों पक्षों का अर्थ स्पष्ट है । कहीं-कहीं श्लेष द्वारा और कहीं-कहीं लक्षणा द्वारा शब्दों में अर्थों का द्वैत निरूपा गया है । कुछ शब्द अथवा वाक्य एकपक्षीय हैं । उनको प्रतीति का तो वाच्यार्थ में होती है या ध्वन्यार्थ में, उभय पक्षों में नहीं । उदाहरणार्थ—

‘अरुण अथगुली आँखें मज्जर’

‘बना दिमानव हेमालय’

अंतिम पंक्तियों में तो बिस्फुक्त अंतिम पंक्ति छोड़कर पूरा भुकाव वाच्यार्थ की ही ओर हो जाता है । ध्वन्यार्थ की हलकी-से-हलकी ध्वनि भी नितीन हो जाती है । ‘पद-पद्म-अमर’ कहकर तो ऐसे ही शब्दों में सुन्दर ध्वन्यात्मकता में पीछा छुड़ा लिया गया है





—तो इस उक्ति में कपोल भी है, नेत्र भी है, पुनर्लो का मंगलन भी है, अश्रु भी है ; अतएव रूपमादृश्य के ध्यान में यह उक्ति एक बड़े क्लृप्तिक प्रसंग में अदोष हो सकती है, और यदि भावसादृश्य की ओर विचार किया जाय, तो भी कोमलता के भाव के कारण भावों की भी सुकुमार उद्भावना होती है, परंतु यदि कवि ऊहा के फेर में पड़कर छायावादी बनने की धुन में उक्ति में यों हल-फेर कर दे—

पुष्प का हृदय चीरकर भ्रमर आस के मोती निकालना है और गुलाब के लिए हार गूँथ-गूँथकर पहना रहा है ।

—तो इस उक्ति में “चीरने और गूँथ-गूँथकर पहना” में जो ने “सजग प्रयत्न” का भाव आ गया है, यह रस की तन्मयता के लिए घातक है । ऊहा से अत्यधिक काम लिया गया है । जो आनंद-विस्मय भाव-विभोरता में होना चाहिए, वह सजगता के चढ़ीत हो जाने से नष्ट हो जाता है । शृंगार भावविहीन होकर रसाभास हो जाता है । हास्य उत्पन्न हो जाता है । छायावादी कवियों को, जो अलंकार की गूढ़ निबंधना के पोषक हैं ऐसे दोष से बचना चाहिए ।

—प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी

( माधुरी जून १९४० )

## आयानवाद में प्रकृति-चित्रण

यद्यपि 'रहस्यवाद' या 'ह्रायावाद' उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी कविता, तथापि इस नाम का नए सिरे में, नए रूप में और नए वातावरण में प्रचार होने से इसके साथ नूतनता का अव्यभिचारो साहचर्य-सा हो गया है। और, इसमें संदेह नहीं कि हमारे नवीन रहस्यवाद की कविताओं पर पश्चिमीय डोली, कोट्स आदि रहस्यवादी कवियों की भावनाओं की प्रत्यक्ष छाप लगी है। किंतु इसमें भी संदेह कि कवींद्र रवींद्र की अग्रजिम प्रतिभा ने अपने तथा अपने देश और समाज के विलक्षण मातावरण ने उन भावनाओं को इस प्रकार रंग दिया कि वे अब हमारी मौलिक संपत्ति हो चुकी हैं। उसी प्रकार हिंदी में भी ऐसे मौलिक रहस्यवादी कवियों का क्रमशः संतोष-जनक विकास हो रहा है, जो अपनी कृतियों और मनोवृत्तियों द्वारा एक अपूर्व युग का सृजन करने में अग्रसर हो रहे हैं।

रहस्यवाद को दो विस्तृत विभागों में देखा जा सकता है—

( १ ) दार्शनिक रहस्यवाद

( २ ) कवि सम्मत

( १ ) दार्शनिक रहस्यवाद की व्याख्या यों की जा सकती है—

रहस्यवाद "विचार-धारा अथवा संभवतः भावना का वह प्रकार है, जो स्वभावतः किसी निश्चित परिभाषा के अयोग्य-सा ही हो। इसका आविर्भाव उस दशा में होता है, जब मानव-मस्तिष्क

परमात्म-तत्त्व आध्यात्मिक पदार्थों को चरम सम्यक्ता का दर्शन करने के लिये उस परम सत्ता से संपर्क का आनन्द लूटने को चेष्टा करने लगे । ऐसी चेष्टाओं ने भारत में मुख्यतः निम्न-लिखित रहस्यवादों का जन्म दिया—

( क ) बौद्ध शून्यवाद ( Nihilism )

( ख ) ब्राह्मणीय सर्वत्मवाद ( Pantheism )

फारस का सूफी मत भी आध्यात्मिक रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है, और हाफिज तथा सादी कवियों ने अपने कविता में इसे मताभिप्रेत किया है । पश्चिम में ग्रीस में, ईसा की पहली दौ-तीन शताब्दियों में रहस्यवाद ने फलने-फूलने के लिए उचित क्षेत्र पाया था, और नव-प्लेटनुवाद ( Neo-platonism )—जिसके प्रचारकों में प्लॉटिनस प्रधान था—ने इसे अपनाया था । मध्ययुग में भी गॉस्प में सेंट बर्नार्ड आदि दार्शनिकों ने रहस्यमय भावनाओं का शरण ली थी । उनकी विचारधारा—“अपने को किसी प्रकार स्वां देना, मानो तुम रह ही न जाओ, और तुम्हारी अपने चेतना का बिल्कुल लुप्त हो जाना—अपने में मे आप खाली हो जाना, नहीं हो जाना—यह है भगवान् के साथ संलाप । इस प्रकार प्रभावित होना क्या है, मानो भगवान् के साथ एक हो जना । ..... सो उस परम पावन परमात्मा के प्रति सारी भावनाओं का अपने में हो एक अवर्णनीय रूप में विलीन हो जाना अनिवार्य है, जिसमें वे सर्वतोभावेन परमात्मा को ही इच्छा में परिणत हो जायँ ।”

भाव-भेद और प्रगति-भेद से रहस्यवादियों के चार प्रकार माने गए हैं—

( क ) भक्ति-उपासक ( Devotional mystics )

( ख ) तार्किक ( Rational mystics )

( ग ) प्रकृति-उपासक ( Nature mystics )

( घ ) प्रेमोपासक ( Love mystics )

( २ ) किंतु बार्थनिक रहस्यवाद की चर्चा हमारे लिए विषयांतर होगी, अतः कवि-सम्मत रहस्यवाद के रहस्य का उद्घाटन ही हमारा ध्येय होगा ।

हिंदी में आदिम रहस्यवादो कवि हुआ है कबीर ; यद्यपि कबीर के रहस्यवाद और अब के रहस्यवाद में एक अंतर है । कबीर का रहस्यवाद संनोषमय है, हमारा असंनोषमय । कबीर ने भौतिकता पर लात मारकर काल्पनिक रहस्यमयता का आश्रय लिया था, हम भौतिकता की असफल कामना से हार मानकर, लाचारी काल्पनिकता का आश्रय लेकर उसमें 'खड़े अंगूर कौन खाय'—वाली बेयसी की संतुष्टि धारण करने की कोशिश करते हैं । यही बात कीट्स और शेली के संबंध में थी । दोनों के जीवन दुःखद थे ; असंतोष-पूर्ण थे । वही नवयुवक कीट्स, जो एक दिन 'वासनाजन्य जीवन' के सम्मुख 'विचारमय जीवन' का तिरस्कार करता था, जिसका धर्म था सांसारिक प्रेम, और सांसारिक प्रेम ही जिसका कर्म था, वही, वही छुट्तीस वर्ष का नवयुवक कीट्स आज मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ असंतोष की विषम ज्वाला में जलता है, और उस घड़ी की कल्पना करता है, "जब प्रेम और ख्याति अनस्तित्व में विलुप्त हो जातीः ।" आह ! कितना भीषण असंतोष ! कितनी दर्दनाक क्लम ! शेली ! जब तूने यह गाया था

मधुरतम वे ही हमारे गान हैं ;

विधुरतम जिनमें भरे अरमान हैं × ।

\* "O, for a life of sensations rather than of thoughts."

† "Love is my religion... my creed is love."

‡ "Till love and fame to nothingness do sink."

× "Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts."

तब क्या तूने अपने वे चम कलेजे को फुसलाने की कोशिश न की थी ? मनुष्य एक विचित्र पहेली है, प्रकृति से ही वह शांति-प्रिय है, किंतु प्रकृति से ही वह इतना सीमित है कि उसे मची शांति प्रायः भिन्न हो नशे । उसकी भोक्तृता उसकी कालानिक्ता का बड़े वेग से पोछा करती है, किंतु कभी पार नहीं पानती । और मनुष्य हार भी मानना नहीं चाहता । अतः अपने भौतिकता की भीमा को कल्पनिक निःसीमता के रूपा में उसकी मान्यता को काल्पनिक अनंतता के रूप में, परिणत करना चाहता है, और इस प्रकार वह उस शांति को पाना चाहता है, जिसकी खोज उसका प्रकृति का एक अनिवार्य अंग है । इन चेष्टा में सकलता-पूर्वक मनुष्य जिस काव्यमय भावना-संसार का निर्माण करता है, उसका रहस्यमय डंका निश्चिन्न है, क्योंकि वह निरा भौतिक और निरा काल्पनिक न होते हुए भी दोनों का अपूर्व समन्वय है ही ।

( ७ ) इस अपूर्व रहस्यमय समन्वय का एक व्यापक निदर्शन है प्रकृति में प्रेयसी का आर्गस अथवा मानव और मानवैतर जीवन में तदात्म्य भावना । जिस समय की गाना है —

निर्झर मग्निता में जा भिन्नते, मग्निताँ जा सागर में,  
समस्त पवन भिलने हैं मन्दर मधुर भावना अंतर में ।  
काई नदी निश्च में निरही, सभी बंध दैवी क्रम में ;  
मिलने-जाने सम भावों में, क्यों न मिलूँ मैं भी तुमसे ?

इस समय वह प्रकृति के पदार्थों में मानवीय आनेगों का अध्यारोप करता है अर्थात् मानव-जीवन मानवैतर जीवन में तदात्म्य का कल्पना करता है । इस प्रकार पंच की —

\* The Fountain mingle with the River  
And the River with the Ocean.  
The Mould of He you mix for ever

सैन एनीला-भू-मुग्धार—शील की मुनि यों बारंवार—  
 दिना दृश्यालो का सुदृक्कन भुना भगनों का भवमल हार ;  
 जलद-गड मे दिवला मुख चंद्र पल-पल चरला के मार,  
 गगन डर पर भूधर सा डर । मुमुक्षु ! भग देनी है साकार !

इन पंक्तियों में प्रकृति-सूत्र में 'सूत्र' का रूप देखा गया है ;  
 प्रकृति-सूत्रों को सत्ता में सुमुखों को सत्ता विहीन हो चुकी है ।  
 देखिए भोमनों मशारे की रंगों की ये पंक्तियाँ —

तारकमय नर - वेणी - दधन ,

शीशकून कर शशि का नूतन ;

रश्मि-नयन मित घन-श्रवणुं टन :

मुक्ताहल अभिगम निहा दे

चितवन मे अपनी !

पुलहनी आ आ वसन-रजनी !

जिनमें 'वसन-रजनी' में उन्हीं आभरणों का मान किया गया है ।  
 भिन्नसे हम किसी रंगगो को मजाले हैं ।

प्रकृति में प्रेक्षणी का आरोर अनादि काल में, अर्थ, ...  
 कविता है, तबसे होना चला आया है ; किंतु फिर भी इस ...  
 सभी आरोरों को हम लयावाद या रहस्यवाद में परिगणित : ...  
 और इसके विश्लेषण के उद्देश्य से कविता का विशिष्ट प्र ...  
 निम्नलिखित 'वादों' में विभक्त करेंगे, और प्रत्येक की ...  
 करने का प्रयत्न करेंगे । वे ये हैं—

With a sweet emotion ;

Nothing in the world is single ;

All things by a law divine,

In one spirit meet and mingle ;

Why not I, with thine ?

—Shelley.

- |            |   |                           |
|------------|---|---------------------------|
| १ वस्तुवाद | } | अथवा केवल वस्तुवाद ( १ ), |
| २ चित्रवाद |   |                           |
| ३ चित्रवाद | } | अथवा केवल छायावाद ( २ )   |
| ४ छायावाद  |   |                           |

वस्तु होती है ठोस, और होती है उसमें लंबाई, चौड़ाई, गहराई तीनों, किंतु चित्र में लंबाई, चौड़ाई तो होती है. गहराई नहीं होती। फिर भी चित्र वस्तु की नकल हुआ करती है और चित्र में उसी स्थूलता की प्रतीति की जाती है, जो वस्तु में विद्यमान होती है। वस्तु और चित्र इयत्ता का भेद है किंतु ईदृक्ता का नहीं। अतः वस्तुवाद और चित्रवाद. इन दोनों को हम वस्तुवाद में ही समाविष्ट करना उचित समझते हैं। स्थूल पदार्थों का स्थूल रूप में चित्रण वस्तुवाद कहा जायगा। और, इसके उदाहरण हमारी प्राचीन प्रायः सभी कविताएँ हैं। यथा सूर का बाल-रूप वर्णन—

जसुमति मन अभिनायु करै ।

कव मेरो लाल मुट्ठवन रँगै कव भगनी पग द्वैक धरै ।

कव है दंत दूध के देवी, कव ननरे मुख बैन भरै ।

कव नंदहि कहि बाबा बोलै, कव जननी कहि मोहि गै ।

जिसमें स्थूल बाल-रूप का स्थूल और स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऐसे ही हैं तुलसी के रावम-वर्णन अथवा भारतेन्दु के नरसिंह-तनूजा अथवा गझनी के वर्णन। इस वस्तुवाद की कविता में भी प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप होना है, और होता चला आ रहा है।

इस वर्णन के साथ स्त्री के शिशु का वर्णन मिलाइए, और देखिए, स्त्री का शिशु कितना रसस्वप्रिय और रसस्वमय है, अपने दादा ( बड़े दाई ) से कितना अधिक चतुर और तत्वज्ञ है—

किंतु उसे हम आमाप'द नहीं करते, क्योंकि वह आगेप लम्बेता,  
 अविशुद्धि आदि अलंकारों और वाग्विचित्रों का परिणाम है।  
 उस आगेप में हमने साधन नहीं कि मानव और मानवोत्तर जगत् में  
 अमेद स्थापित कर सके, क्योंकि यदि की कल्पना हमारी के मीदर्य  
 को निरस्त कर दे प्रकृति के मीदर्य को उपासना नहीं कर सकी थी,  
 हमारी को निरस्तमन्त्रु कर प्रकृति को निरस्तमन्त्रु करने में  
 असमर्थ थी। हमने अमेद नहीं कि किम समस्त कानिदाम करते हैं—  
 यदि यशुओं में अज्ञा होनी, तो पार्थी के नेश-नाश को देकर  
 चमरी भीड़ करने वालों में प्रेम करना छोड़ देनी, उस समय वह  
 मानवोत्तर दुष्ट ने मानव-साधन-लज्जा का आगेप करते हैं। किंतु  
 किम भी हम इस कविता को यशुताद को भोगी में ऊपर उठने नहीं  
 दे सकते। इस आगेप में स्थाना है, स्थाना है, लेश-मात्र भी  
 रहस्यमयता नहीं। आनंदमयिकता है, कृपिगता है, किंतु अमेद की  
 प्राकृतिकता नहीं। इस भोगी में हम विज्ञापति की वह कविता

सुने दादा देने देनी  
 बीज से आमाप "योका  
 तोर मतो आर देगी नाई तो बोका।  
 लौद ने थाके अनेक दूरे  
 केमन करे लुंई।"  
 आमी योनि—दादा. तुमी  
 जानो ना किच्छुइ  
 मा आमादेर हामि जयन  
 बइ जानलार कोरे,  
 तयन तुमि बोलये कि मा  
 अनेक दूरे याके ?"  
 तवू दादा बोले आमाप—"बोका,  
 तोर मतो आर देगी नाई तो योका।"





दिनमें कवि दूध की लान जागूगी और उदाम पीद्वं देन-देनकर  
माने-माने नहीं आयागा ।

अथ निम्नलिखित—

देना इसे कहे आगिया लखी  
बर्तिय तुमिया बनाए जाये,  
रुम - रिमला कुमम रमणी  
रिगमे आनन शिरारि अमनी  
अभिनेते, शेषे अनन टाँढवा  
अगिया बड़िया जाये ।

दिनमें कुमुम-रमणी को लखा, उसकी गिर और उमका म्मान  
होकर पतन एवं अवमान हम बनाये-निन्द ने वर्णित हैं, दिनमें हम  
कुमुम और रमणी के भेद का भाव कर ही नहीं पाते । कवि को  
प्रतिभा ने अपने आदू के टेंडे ने-हूकर कुमुम को रमणी बना डाला,  
और इनको मूयमरता ने कि हम आदन्व-चकित रह जाते हैं । देखते  
हुए भी विमोह हो जाते हैं, मगभने हुए भी ठिठक-ने जाते हैं ;  
हमारा अलंकारों का ज्ञान काम नहीं आता । यही रहस्यमयता इस  
कविता की विशेषता है । "छायावाद की कविताएँ ध्वंजना और  
ध्वनि-प्रधान होती हैं ।" और, इसी के चल पर वह वस्तुवाद की  
नंकुचित परिधि से निकल छायावाद के विस्तृत व्योम में बिहार करने  
लग गई है ।

यहाँ हम यह सन्नित समझते हैं कि जिस प्रकार वस्तु और चित्र  
का अंतर दिखनाया गया है, उसी प्रकार विष और छाया में भी  
दिखलाया जाय । जब मानव-हृदय पर मानवेतर प्रकृति प्रतिफलित हो,  
तो वह प्रतिफलन विष होगा, और इसके विपरीत जब मानवेतर  
प्रकृति पर मानव-मनोवृत्ति प्रतिफलित हो, तो वह प्रतिफलन छाया  
होगी । प्रथम अर्थात् विषवाद का उदाहरण जिसमें मानव-हृदय  
आधार हो, और मानवेतर प्रकृति आवेय—

पत्ते में मैं पत्ती बनकर कभी-कभी था लहराता ;  
 फूलों की फिर पंखुड़ी होकर कभी-कभी हँसता जाता ,  
 किंजल्कों में बैठ, प्रमुद हो करता अपना ही दर्शन ;  
 कहीं बैठता, कहीं सोचता, करता सिद्ध कहीं साधन ।  
 विश्व-विजय करने के हित मैं विश्व-राग मन से गाता ;  
 विश्व रूप मेरा धारण कर मेरे सम्मुख आ जाता—  
 मेरे भावों का मुझमें ही प्रतिबिम्बित होकर आना ;  
 मैं ही दर्पण, दृश्य-ज्योति मैं, दर्शक मेरा बन जान ।

द्वितीय अर्थात् छायावाद का उदाहरण, जिसमें प्रकृति आधार  
 हो, और मानव-मनोवृत्ति आधेय—

कैसी अखंड यह चिर-समाधि ! यतिवर ! यह कैसा अमर ध्यान ?  
 तू महा शून्य में खोज रहा किस जटिल समस्या का निदान !

उलझन का कैसा विषम जाल !

मेरे नगपति ! मेरे विशाल ! ( 'दिनकर' )

उपर्युक्त पंक्तियों में 'हिमालय' में यतिवर-हृदय का आरोप किया  
 गया है । अथवा रवींद्र की ये पंक्तियाँ —

तारि मुख देखे-देखे आंधार हासिते सेखे

तारि मुख चेये-चेये करे निशि अवमान

सिहरि उठे रे वारि दोले रे दोले रे प्रान

जिनमें अंगकाय हमारे ही समान हैंना सीखता है, और सलिल  
 सिहर उठता है । अथवा पंत की उक्ति छाया के प्रति—

बौन-बौन तुम परहित वसना, म्लान-मना, भू-पतिता-सी ?

भूल-भूलित, मुक्त-कुंतला किसके चरणों की दासी ?

अरा ! अधागिन हो तुम मुक्त-सी मजनि ! ध्यान में अब आया,

तुम हम तस्वर की छाया हो, मैं उनके पद की छाया ॥

—प्रो० घमंड्र ब्रह्मचारी

( सुभा, ५ अगस्त, १९३६ )

आधुनिक कविता में द्वायवाद ❀

आदिश की परंपरा में लक्षण-ग्रंथों का निर्माण, लक्षण-ग्रंथों के  
 अन्तर्गत वर्गीकरण, वर्गों का आकार लेकर हुआ करता है। पहले  
 आदिश की वर्गीकरण का तरीका है, जो कि इनकी समानताओं और विभिन्नताओं  
 को ध्यान में रखकर है। लक्षण-ग्रंथों के अन्तर्गत वर्गीकरण के विभिन्न तरीकों  
 के अन्तर्गत वर्गीकरणों को, सबसे पहले नियम का पालन किया है।  
 इसका यह मतलब नहीं कि समानताओं को ध्यान में रखकर नियम के  
 अन्तर्गत वर्गीकरण को, उसे वर्गीकरण करने से कुछ कदम पहले का अधिकार  
 हो न हो; परंतु इसका यह भी मतलब नहीं कि मूल नियम से  
 पालनपूर्वक वर्गीकरण करनेवाली अप्रामाणिक कल्पनाएँ की जायें, और ऐसे  
 वर्गीकरणों का अस्वीकार किया जाय, जो प्रस्तुत नियम से एकदम असंबद्ध  
 हो। दिदी में यह सब गरी हो रहा है। व्याख्या के संबंध में जितने  
 लेख देने में आए हैं, सबसे पहले तो बड़ी-बड़ी कड़ी गई है; पर  
 कहीं तो कुछ दार्शनिक तरीकों की उल्लेख से प्रस्तुत नियम का  
 पालन कर दिया गया है, कहीं कुछ कल्पनाओं की अपर्याप्त उद्भावना  
 की गई है, और कहीं योग्यता का अधिकार की समानताओं के दिदी के  
 लक्षण-ग्रंथ के संबंध में चर्चाओं की गई है।

७ [ यह लेख मन्व १६-६ की 'मनुष्य' के विवरणों में प्रकाशित हुआ था। उन दिनों लेखक विद्यापीठ जीवन में ही थे। उस समय वह छायावाद काव्य के संबंध में बहुत खोली विवेचना हुई थी और अधिकांश विद्वान् उसके विचार में ही थे। तबक में इस लेख में छायावाद काव्य के स्वरूप का स्पष्ट करने की चेष्टा की है। ]

छायावाद के संबंध में लिखते हुए हिंदी के सदीयमान समालोचकों ने बड़ी-बड़ी आतंककारी बातें कह डाली हैं। छायावाद किसी विश्वव्यापी आंदोलन का एक अंग है। उसका संबंध समस्त संसार को आज्ञाविन कर देनेवाली किसी वेगवर्ती साहित्य-धारा से है। उसकी गणना उन दो-एक आध्यात्मिक जागृतियों के समकक्ष होनी चाहिए, जिनके कारण समाज का जीवन-सात कुञ्ज-का-कुञ्ज हो जाता है, और जो संसार के इतिहास में अनेक बार नहीं आईं—ये और ऐसी ही अन्य बातें बड़ा सुगमता के साथ एक ही सौंस में कह डाली गईं। इतना ही नहीं, जब जवान चेतनाम हुई, तब आप 'हिंदी के, उमर खैयाम है, आप रवींद्रनाथ से कम नहीं हैं, आप ऐसे हैं; और आप वैसे हैं' की अनर्गल व्यंजना के साथ 'इनमें नब्बे प्रतिशत रहस्यवाद है, ये हृदयवादी हैं, ये प्रतिविम्बवादी हैं, ये संकेतवादी हैं' की सांप्रदायिकता भी आ मिली, और अपनी-अपनी डफली से अपना-अपना राग अलापा जाने लगा। यह एक बहुत बड़ी साहित्यिक उच्छ्वलता का काल था; और अब भी वह दूषित वायुमंडल हमारे साहित्याकाश से दूर हो गया है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।

जहाँ एक ओर इस प्रकार की बात की करामात दिखाई जा रही थी, वहीं समालोचकों की एक शैली ऐसी भी थी, जिसमें कुछ तो परंपरागत संस्कारों के वशीभूत होकर और कुछ बढ़ती हुई उच्छ्वलता से स्रुब्ध होकर नवीन कविता का विरोध किया और यहाँ तक लिखा कि छायावाद में कोरी नक-ही-नकल है, रवींद्रनाथ शैली और ग्लेक के अतिरिक्त उसमें कुछ है ही नहीं, उसकी सृष्टि अनधिकारियों ने की है, जिन्हें न व्याकरण के नियमों की परवाह है, और न छंद-शास्त्र का लेश मात्र ज्ञान है। घात-प्रतिघात के नियमों के अनुसार यह स्वाभाविक ही था कि एक दल द्वारा अत्यधिक प्रशंसित कविता को दूसरे दल द्वारा अत्यधिक कुत्सित प्रदर्शित करने





इसी प्रकार नदी की जल सफाई, यहाँ समाजोन्नयन कार्य-  
प्रणाली बनाना का प्रयास हमें है। किसी समुदाय का स्वास्थ्य-प्रणाली  
बनाना, हमारे काम-प्रणाली के प्रदर्शन-पूर्वक प्रकाश संश्लेष विचार प्रकाश  
कर देना में ही सम्मिलित है। संश्लेष प्रणाली का हमें अधिक ज्ञान देना है।  
किस प्रकार किसी वास्तविक के स्वास्थ्य प्रणालीकरण में हमारे विचार  
इसी और लगाने का काम है। नदी-प्रणाली में काम नदी चल सकना,  
उसके चतुर्दिक कौन-कौन-सी सम्पत्ति है, दिग्गज हमका निर्माण किया  
है, किन्तु किन वास्तविकों में हमकी फैली-फैली सेवा की है, हमने किन  
प्रकार के सुखों की लगी और दिग्गज प्रणाली है, किन सुख में फैली  
सुखों है, उसकी प्रणाली प्रणाली फैली प्रणाली में फैली जाती है, वास्तविक  
की वर्तमान प्रणाली फैली है और प्रणाली में फैली रहने की सम्भावना  
है—इस सब बातों के सम्मिलित में ही हमारा स्वास्थ्य-प्रणालीकरण सम्मिलित



, उसी प्रकार छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करने में भी उसकी उत्पत्ति की परिस्थितियों, उसकी विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं, उसके विकास-क्रम, उसकी वर्तमान अवस्था तथा भविष्य के संभावित स्वरूपों आदि का विवेचन आवश्यक है। हॉ. इस विवेचन में निरंतर ध्यान रखने की बात यह होगी कि जैसे हाथ, पैर, नाक, कान आदि शरीर के अनेक अवयव एक शरीर के संघटन में अपनी सार्थकता रखते और एक मन का संचालन स्वीकार करते हैं, वैसे ही छायावाद के स्वरूप-प्रत्यक्षीकरण में सहायक बाह्य उपकरणों की मूल-भूत उस चेतन्य संचालिका शक्ति का सम्यक् प्रदर्शन हो, जिसके वशीभूत ये सारे बाह्य उपकरण हैं। अन्य शब्दों में, छायावाद की विविध प्रवृत्तियों के समीकरण—उनके समन्वय का प्रयास भी यथासंभव होना चाहिए, अन्यथा बिगड़े परिवार के विविध व्यक्तियों की तरह वे सब विशृंखल रहकर किमो उच्च उद्देश्य की पूर्ति न कर सकेंगी।

फ्रांस की जगत्प्रसिद्ध राज्यक्रांति का कारण पूछने पर एक दूरदर्शी पंडित ने बाबा आदम को ही सरी खुराफात की जड़ बतलाते हुए कहा था कि यदि उसने शैतान के बहकावे में आकर वर्जित फल न चख लिया होता, तो पृथ्वी पर न तो पाप का प्रवेश होता, और न फ्रांस की राज्यक्रांति होती। वास्तव में पंडित को सूझी बड़ी दूर की थी। हिंदी में छायावाद की उत्पत्ति का अनुसंधान करते हुए कुछ समालोचकों ने भी ऐसी ही दूरदर्शिता दिखालाई है। वे कहते हैं—जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जिनमें मनुष्य की आत्मा अपने अस्तित्व का विस्मरण कर विश्वात्मा में लीन हो जाती है, उन कुछ क्षणों में उसकी जैसी कुछ भावनाएँ होती हैं। उन्हें जब काव्य का स्वरूप मिलता है, तब वही रहस्यवाद या छायावाद कहलाता है। कहने का मतलब यह कि यदि मनुष्य के जीवन में कुछ क्षण ऐसे न होते, जिनमें वह विश्वात्मा के साथ अपनी एकरूपता का अनुभव करता है, तो हिंदी में जो छायावाद की कविताएँ दिखाई देती हैं, वे न दिखाई देती। कितनी अकाव्य

उक्त है ! किननी बड़ी बलेंद्वयानी ! इसमें कितनी दार्शनिकता है !

परन्तु फ्रांस की राज्यक्रांति के वायाआदम से भी बड़े-बड़े कारणों से जिनका उल्लेख आत उद्द मो वषों में सैकड़ों प्रसिद्ध इतिहास-लेखक करते आ रहे हैं। तत्कालीन राज्यशासन की नृशंसता, क्रांतिकारी विचारों के प्रचार में उन्मुख सामूहिक जागृति, उपयुक्त संयोग, आदि-आदि अनेक कारण बननाए जा चुके हैं, और अब तक अनुसंधानों का काम बना हुआ है। यह ऐतिहासिक विचारधारा है। छायावाद की उत्पत्ति पर विचार करने के लिए उर्युक्त दार्शनिकता की अपेक्षा हमको इस प्रकार की विचारधारा की आवश्यकता अधिक है। यदि सब पूछा जाय, तो हमारे दार्शनिक समालोचक जिसे छायावाद या रहस्यवाद कहते हैं, उसका अस्तित्व हमारी आधुनिक कविता में इतना अधिक नहीं कि उसके नामने अन्य प्रकार की कविताएँ ( जो छायावाद की कविताएँ कहलाती हैं, पर दार्शनिक छायावाद से जिनका कोई संबंध नहीं ) नगण्य हों, या गौण स्थान की अधिकारिणी हों।

जिम दिन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने 'भारत-दुर्दशा'-नाटक के प्रारंभ में समस्त देशवासियों को संबोधित करके, देश की गिरी-हुई हुई अवस्था पर उन्हें आसू बहाने को आमंत्रित किया था, उस दिन का ठीक-ठीक अनुसंधान करना अब कठिन है ; पर यदि उसका पता लग सके, तो इस देश के अथवा कम-से-कम हिंदी-साहित्य के इतिहास में वह किसी अन्य महापुरुष के जयंती-दिवस से किसी प्रकार कम महत्त्व-पूर्ण नहीं हो सकता। उस दिन शताब्दियों से सोते हुए साहित्य ने जागने का उपक्रम किया था, उस दिन रुढ़ियों की अनिष्टकर परंपरा के विरुद्ध प्रबल क्रांति की घोषणा हुई थी, उस दिन छिन्ने-भिन्न देशों को एक सूत्र में बाँधने की शुभ भावना का उदय हुआ था। उस दिन देश और जाति के प्राण एक सत्कवि ने सच्चे जातीय जीवन की भूलक दिखाई थी, और उसी दिन संकीर्ण प्रांतीय मनोवृत्तियों का अंत करने के लिए स्वयं सरस्वती ने राष्ट्रभाषा के प्रतिनिधि कवि के कंठ में बैठकर

एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वामित की थी । मुक्तदेशिनी शुभ्रभरणा परवशा भारतमाता की करुणोज्ज्वल छवि देश ने और देश के साहित्य ने उसी दिन देखी थी, और उसी दिन मुनीय दृष्टी-फूटी शृंगारिक वीणा के बदले एक वज्र गभीर भूतकार, जिसे मुनने ही एक नवीन जीवन के उल्लास में वह नाच उठा था । वह दिवस निश्चय ही परम मंगलमय था ; क्योंकि आज भी उसका स्मरण कर हम अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं । यदि सच पूछा जाय, तो उसी दिन से एक नवीन चेतना हमारे साहित्य की मिली, और उसी दिन से उसके दिन फिरे । आज हम जिस साहित्यिक प्रगति पर इतने प्रसन्न हैं, उसका बीजारोपण इसी शुभ दिवस को हुआ था । छायावाद की वर्तमान काव्यधारा की मूल स्रोतस्विनी भी तत्कालीन सर्वतोमुखी नवजीवन को पाकर सलिलवती हुई थी ।

स्वामी दयानंद, भारतेन्दु हरिश्चंद्र आदि के उद्योग से सामाजिक, सांप्रदायिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में जो हलचल मची, उसके परिणाम-स्वरूप सबसे अधिक, महत्त्व-पूर्ण बात हुई जनता में शिक्षा की अभिरुचि । संस्कृत तथा उर्दू-फारसी की ओर प्रवृत्त करनेवाली प्रेरणा स्वामी दयानंद से अधिक मिली, और हिंदी-अंगरेजी की पढ़ाई तो कुछ पहले से ही प्रारंभ हो चुकी थी । पढ़ोस में होने के कारण उन्नतिशील बंगला-भाषा की ओर भी कुछ लोगों का ध्यान लगभग उसी समय से खिंचा । इस जोरदार शिक्षा-प्रचार का जो प्रभाव राजनीतिक अभिरुचि, सामाजिक जागृति, धार्मिक चेतना आदि के रूप में पड़ा, वह तो पढ़ा ही, हिंदी-साहित्य-क्षेत्र भी उसके शुभ परिणाम-स्वरूप अनंत उर्वर हो उठा । सारा साहित्य नवीन प्रकाश से परिपूर्ण होकर ज्योति की शत-सहस्र किरणें विकीर्ण करने लगा । हमारी कविता भी सजग हो उठी । वह अपनी स्थविरता का परित्याग कर आगे बढ़ी, और सामाजिक प्रवृत्तियों के अनुकूल रूप-रंग बदल शिद्धि जनता के साहचर्य में आ गई । स्वयं देवी

सरस्वती ने अपने अलौकिक कर-स्पर्श से कविता-कामिनी को सुवर्णमयी बना दिया था। फिर भला भक्ति-गद्गद् भाव से घर-घर उसकी आरती क्यों न उतारी जाती, क्यों न उसकी यशःप्रशस्ति अमिट अक्षरों में हमारे हृदय-पटल पर अंकित कर दी जाती !

शिक्षित समाज के समकक्ष पहुँचने में हिंदी-कविता को जो रूप-रंग बदलने पड़े, उसका कुछ विवरण देने की आवश्यकता होगी ; क्योंकि यही विवरण प्रचलित छायावाद की कविता के विकास का प्रारंभिक इतिहास है। हिंदी के अनेक समालोचकों ने जान-बूझकर अथवा भ्रम में पड़कर इस संबन्ध में बहुत-सी भ्रामक बातें कह डाली हैं, जिसके कारण छायावाद की कविता कभी कुछ और कभी कुछ तथा कभी-कभी कुछ की कुछ समझ पड़ती है। एक नवीन अलोचक को 'वर्तमान हिंदी-कविता और छायावाद'-शीर्षक लेख के उस अंश में, जहाँ प्राचीन और नवीन कविता का अंतर दिखाया गया है, मेरे मत से कुछ इसी प्रकार का भ्रम हो गया है। प्राचीन और नवीन में भेद बतलाते हुए उन्होंने यह कहा है कि एक में सौंदर्य और प्रेम की शारीरिकता और दूसरे में उसके आंतरिक रूप के प्रदर्शन का प्रयास है। यह कथन बहुत कुछ सत्य का तिरस्कार करता है, पर यहाँ इसके आक्षेप से प्रयोजन नहीं। परंतु प्राचीन और नवीन के उच्युक्त भेद के आधार पर जब वे कहते हैं कि इस 'अंतर के कारण ही इन दोनों स्कूलों के कवियों की वर्णन-शैली और प्रणाली में भी भेद है ; पुराने ढंग के कवि कथा की भाँति लिखते हैं, वर्णन करते हैं और नए ढंग के कवि आंतरिक चञ्छवास को स्वयं अनुभव करने की चेष्टा करते हैं'—तब उनका भ्रम मूर्तिमान् प्रत्यक्ष देख पड़ता है। वे वर्णनात्मक कविता को स्थूल प्रेम के प्रकाशन के उपयुक्त तथा आत्माभिव्यक्ति-विषयक कविता को सूक्ष्म प्रेम या 'प्रेम के आंतरिक रूप' की प्रदर्शिका कहकर इन दो श्रेणियों की कवि-परंपरा के साथ जो अन्याय करते हैं, वह तो करते ही हैं,

साथ ही वे इस कथन से कविता के मूल में स्थित मनोवृत्तियों से अपनी अनभिज्ञता भी सिद्ध करते हैं। इनकी अधिक वर्णनात्मक कविताओं में सौंदर्य तथा प्रेम के तूद्धम रूप का चित्रण हुआ है, इतनी अधिक आंतरिक उन्मत्त-संवादिनी कविता से कलुषित, शरीरजन्य प्रेम के फुहारे फूट निकले हैं, इतने अधिक कवियों ने संपर्युक्त दोनों शैलियों में रचनाएँ की हैं कि न तो उद्धरणों की आवश्यकता रह जाती है, और न और कुछ कहने-सुनने की ही।

सच बात तो यह है कि अँगरेजी के अध्ययन के कारण उसकी 'लिरिक्स' की ओर हमारी प्रवृत्ति अधिक हुई और चन्हीं के अनुकरण से हमारी आधुनिक कविता में आत्माभिव्यंजन की प्रधानता है। यहाँ अनुकरण से हमारा अभिप्राय शैली के अनुकरण में है। इसे स्वीकार करने में असमंजस की कोई बात नहीं। कविता के कला-पक्ष में—शैली आदि में, हिंदी को अन्य भाषाओं का ऋण मान लेना पड़ेगा। संस्कृत की तो कोई बात नहीं, उर्दू और बँगला के जितने ही छंद हिंदी ने उधार लिए हैं। नवीन कविता का 'हृदयवाद' भी संस्कृत के 'मुक्तकों' तथा उर्दू की 'दर्द-भरी' गजलों के ढंग का है। कवित्व कम और 'चोट' अधिक—यह इसकी विशेषता है। इसका यह मतलब नहीं कि इस क्षेत्र में हिंदी की मौलिकता का बिलकुल लोप हो गया। हिंदी-कविता के उस क्रांतियुग में एक बड़ी मौलिकता ब्रजभाषा के परित्याग और खड़ी बोली के ग्रहण के रूप में दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त निरंतर भाषा-संस्कार अनेक नवीन हिंदी-छंदों का निर्माण, मात्रिक छंदों में अतुकांत कविता की रचना आदि इस क्षेत्र की महत्त्व-पूर्ण मौलिक कृत्तियाँ हैं। "निरालाजी" के स्वछंद छंद के रूप में भी हिंदी को एक बहुत बड़ी मौलिक वस्तु मिली है।

• कविता के कला-पक्ष के परिवर्तनों का साधारण उल्लेख कर चुकने पर उसके भाव-पक्ष पर विचार करने की बारी आती है; परंतु

द्रायावाद या रहस्यवाद के संबंध में कुछ ऐसे मत प्रकट किए गए हैं, जिनके कारण यहाँ ठहरकर कुछ विचार करने की आवश्यकता होगी। हिंदी के कुछ विद्वान् रहस्यवाद को एक विशेष काव्य-परंपरा न मानकर केवल भावों के व्यक्त करने की एक शैली-मात्र मानते हैं, और "अन्योक्ति", "समासोक्ति", "ललित" आदि अलंकारों में ही तमाम रहस्यवाद का पर्यवसान कर देते हैं। रहस्यवाद को ध्वनि-काव्य कहकर वे उसकी आध्यात्मिक व्यंजना स्वीकार करते हैं, किंतु एक स्वतंत्र विचारधारा के रूप में वे उसे नहीं ग्रहण करते। "सरस्वती"-पत्रिका को मंगलदत्तोय टिप्पणियों में श्री सुमित्रानंदन पंत की कविताओं का विवेचन करने हुए, आज से कुछ महीने पहले एक प्रसिद्ध आलोचक ने उन्हें विस्मयवादी कवि ठहराया था। मुझे स्मरण आता है, इस आलोचना में भी शैली के आधार पर ही ऐसी बात कही गई थी। मैं अपने मत का स्पष्टीकरण कविताओं के उद्धरण देकर करना चाहता हूँ।

१. स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार चकित रहता शिशु-सा नादान ;  
विश्व के पलकों पर सुकुमार विचरते हैं जब स्वप्न अजान ।  
न-जाने नक्षत्रों से कौन,  
निमंत्रण-मुक्त हो देता मौन !  
( पंत )

२. चढ़कर मेरे जीवन-रथ पर,  
प्रलय चल रहा अपने पथ पर;  
मैंने निज दुर्बल पद-बेल पर,  
उससे हारो होड़ लगाई ।  
( प्रसाद )

३. तुम हो प्रियतम मधुमास, और मैं पिक, कल-कूजन तान,  
तुम मदन पंचशर-हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान ;



हो अपनी स्थिति देखी। उसने अपने अतीत की तुलना अपनी तत्कालीन अवस्था से की, और दोनों के बीच एक दुर्लभ्य खाई की कल्पना से वह कोंग उठा। जो देश कभी अपनी स्वतंत्रता का उपयोग दोन-दुर्बल राष्ट्रों को रक्षा में करता था, जिसने अपने अस्तित्व की मार्थकता ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल के निरंतर विकास में समझ रखी थी, आज वही पराधीन होकर अपनी मुक्ति का मार्ग भी नहीं पा सकता। जिस देश में सर्वप्रथम विश्व मैत्री-जैसे उच्चादर्शों की कल्पना की गई थी, आज वही शून्य-सहस्र खदों में विभक्त होकर पारस्परिक वैमनस्य का केंद्र बन रहा है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती थी, जिस देश में नवागता 'वधू' को 'गृहस्वामिनी' की आदरणीय उपाधि मिलती थी, आज वही देश अपनी स्त्रियों का डंडों से सरकार बनाना सीख गया है। जिस शस्यश्यामल भूमि में किसी ने कभी अकाल का नाम नहीं सुना था, वहाँ आज किसी को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। जहाँ सुख था, शांति थी, स्नेह और आनंद था, आज वह हाहाकार के सिवा और कुछ भी नहीं! जो कभी ऋषियों को तपोभूमि थी, जहाँ ऋषि-कन्याएँ मृगशावकों के साथ खेलती-कूदती रहती थीं आज वहीं बड़े-बड़े नगर बम गए हैं, जिनमें बिलासिता की पुनलियाँ नहीं हैं, और रहते हैं ऐसे मनुष्य जो मनुष्यता के लिए कलंक हैं। जिन ग्रामों में दिन भर के काम में थके हुए मनुष्य संध्या-समय दापक जनाकर परिवार के साथ किसी धार्मिक पुस्तक के पाठ का आनंद पठाते थे, वे सबके-सब आज उजड़ गए। कोई किसी को मांत्वना देनेवाला नहीं कोई 'किम' की बात पूछनेवाला नहीं! यह भी कोई देश है, यह भी कोई रहने का जगह है, यह भी कोई जीवन है!

इस युग की कविताओं में कव्या की एक क्षीण आभा सर्वत्र व्याप्त मिलती है, कहीं-कहीं इसी कव्या की शक्ति से मृदुल, रहस्यमयी उक्तियाँ भी कवि-हृदयों से निकल पड़ी हैं। देखिए—





राजनैतिक-चेतना में अनुप्राणित "नवीनजी" की 'विप्लव-गायन'-शीर्षक कविता बहुत प्रसिद्ध है। क्रांतिकारी भावना से भरी मेरे मित्र श्री रामशरण द्विवेदी की लिखी हिंदी की एक उत्कृष्ट कविता और है -

मैं कवि हूँ मेरे जीवन का मूत्र मंत्र है क्रांति ।

×

×

×

ज्यो-ज्यो बढ़ती है मेरे अंतरतर की व्याकुल ज्वाला,  
ज्यो-ज्यो होता हूँ मैं पागल कर देनेवाला प्याला ।  
हृदय-मिथु मग्न करता है जब मेरा निपाद का वात,  
जब मेरा अस्तित्व काँप उठता है सद निर्दय आघात ।  
जीवन की रजनी में उठती है जब मेरी की माला,  
निमिष-अक में जब कि धिरकती है चपला अति विकराला ।  
उसी समय भङ्गन हो उठने हैं मेरे प्राणों के तार,  
अग्नि-शिखा को पहनाता हूँ मैं कोमल कुमुमों के हार ।  
मेरे गायन में दो लय हैं दुहरी गति दो राग,  
मत्त धक्कती हुई आग है, मलय-मृदुल अनुराग ।  
मैं रवि हूँ, पावक हूँ, शशि हूँ शीतल सुमन सुवास,  
अटल शक्ति हूँ, किन्तु निहित है मुझमें हास-विलास ।

समाज को अनेक कुरीतियों पर जैसी भावुकता-पूर्ण रचनाएँ  
श्री मिय रामशरणजी की "आर्द्रा"-नामक पुस्तक में हैं, हिंदी में वैसे  
अन्यत्र नहीं हैं। उनकी "अच्छूत", "अग्नि-परीक्षा" आदि कविताएँ  
हृदय की कोमल वृत्तियों का जिन तीव्रता में उद्रेक करती हैं, उसका  
अनुभव सहृदय पाठक करते ही होंगे। गुप्तजी की भाषा भी सरल,  
सुन्दर विषय के उपयुक्त है।

प्रचीन तपोधनों में विचरण करने की इच्छा रखनेवाले आधुनिक  
योगी न गरिक जीवन से लुब्ध हो, तो आश्चर्य क्या है? यह उन्हीं  
की प्रशंसा है -

आश्रो-आश्रो नगरवह्नि से तप्त नागनिक निर्जन में,  
 यहाँ एक मरिना बहती है जिसकी लोल लहरियों में—  
 अवगाहन कर शीतल होले जिसका जितना जी च'हे,  
 रुचिर कूल की रम्य लताएँ रन रहती रँगरलियों में ।

इसी प्रकार की बहुत-सी कविताएँ सामयिक स्थिति की प्रेरणा ने  
 लिखी गईं, जिनका विस्तृत विवरण स्थल सकोच के कारण नहीं दिया  
 जा सकता, केवल द'-एक संकेत ही किए जाते हैं । स्त्री-समाज के  
 चिरकालिक पतन में क्षुब्ध हो, गोस्वामीजी की प्रसिद्धि पंक्ति "ढोल  
 गँवार शुद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" के प्रतिवाद-मन्त्र,  
 मानो कविवर श'लो के कंठ से कूट मिलाकर पं० सुमित्रानन्दजी  
 पंत नारी जाति का संबोधित करते हुए कहते हैं—

तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,

मृदुल दुर्बलता, ध्यान ;

तुम्हारी पावनता, अभिमान ,

शक्ति, पूजन-सम्मान ;

अकेली सुंदरता कल्याणि !

सकल ऐश्वर्यों की संधान ।

इसी प्रकार सुप्त समाज की निद्रा-भंग का आयोजन "निरालाजी"  
 किन सुकुमार शब्दों में करते हैं—

जागो फिर एक बार,

ध्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें,

अरुण-पंख तरुण किरण खड़ी खोल रही द्वार ।

X

X

X

देश-काल से प्रेरित और प्रभावित होकर हमारी कविता का प्रवाह  
 किस ओर जा रहा है यह ऊपर संक्षेप में दिखाया गया । परन्तु इन  
 प्रभावों से परे भी साहित्य में कुछ होना चाहिए वह जो सार्वदेशिक  
 और सार्वकालिक है । कहने का मतलब यह नहीं कि जो साहित्य देश

और काल के अनुकरण में बनता है वह स्थायी नहीं होता अथवा उसकी गणना निम्न कोटि में होती है। सच्चा कवि तो अपनी प्रतिभा के बल से क्षणिक परिस्थितियों में भी स्थायी साहित्य के योग्य कल्पना करता है। किंतु इससे भिन्न जो दूसरे प्रकार का साहित्य है वह मनुष्य मात्र की भावनाओं से समान सामंजस्य देखने के कारण अखिल मानव समाज की संपत्ति सहज ही हो सकता है।

प्रकृति मनुष्य की चिरंतन सहचरी है। वायु के मृदुल वेग से धीरे-धीरे कलकल छलछल करते हुए बहनेवाले भरने, पहाड़ियों और बनराजि, नदी का मंद प्रवाह, रातभर न सोनेवाले तारे, नील नभ, विस्तृत उद्यान, ये सब मनुष्य-मात्र के लिए आकर्षण रखते हैं। इनमें सबकी वृत्तियाँ रमती हैं। इनके अतिरिक्त मानव-समाज के लिए कल्याणकर प्रेम, स्वदेशानुराग, विश्वैक्य आदि की भावनाएँ भी बड़ी स्वाभाविक हैं, कम-से-कम सम्य मानव-समाज ने उन्हें स्वाभाविक-सा बना लिया है। इस प्रकार की मानव-सुनभ वस्तुओं तथा भावनाओं में कविगण चिरकाल से लीन होते आए हैं, और छायावाद की आधुनिक हिंदी-कविता में भी ऐसी रचनाएँ होने लगी हैं, जिनमें उक्त भावनाओं के प्रतिबिंब देख पड़ते हैं।

इस भेणी के तीन प्रधान कवि "प्रसाद", "निराला" तथा "पंत" हैं। इनके अतिरिक्त गाँविंदवल्लभ, सियारामशरण, "वियोगी", "नवीन", भगवतीचरण आदि की थोड़ी-सी रचनाएँ ऊपर की पंक्ति तक पहुँचती हैं। स्त्रियों में महादेवी वर्मा की गणना की जा सकती है, ऐसी कविताएँ लिखने का श्रेय पं० माखनलाल चतुर्वेदी को भी दिया गया है।

उपयुक्त तीन कवियों पर अलग-अलग निबंध लिखने-भर की सामग्री अनायास मिल सकती है, पर यहाँ बहुत

संज्ञे में दो-चार बातें कही जा सकेंगी । “प्रसादजी” भारतीय सभ्यता तथा आर्य-संस्कृति की सच्ची जानकारी रखने के कारण हमारी युग-युग की संचित सामग्री के उत्तराधिकारी थे । इसके साथ उनके सच्चे कवि-हृदय ने मिलकर मणि-कांचन संयोग को प्रत्यक्ष कर दिया है । जीवन की गहन अनुभूतियाँ व्यक्त करने में उनकी कविताएँ समर्थ थीं, साथ ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक भावनाओं पर भी उनको अंतर्दृष्टि ठहरती है । बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रकृति का जैसा समीकरण “प्रसादजी” करते हैं, उसे देखकर मन मुग्न हो जाता है । थोड़ी अवस्था में लिखा हुआ उनका “प्रेमपथिक” विश्वपथी की भावना से ओत-प्रोत है । उनकी प्रारम्भिक कृतियों में भी सुन्दर रहस्यमयी उक्तियाँ मनोमोहनी हुई हैं । पश्चत तो उनका काव्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया था ।

“निरालाजी” हिंदी के श्रेष्ठ दार्शनिक कवि हैं । इस दृष्टि से वे अंगरेज कवि ब्राउनिंग से समता रखते हैं । दर्शन बुद्धिगम्य विषय है, और काव्य में हृदय की वृत्त काम करती है, इस दृष्टि से दर्शन और काव्य का गेन कम मिलता है, और इसी दृष्टि से कुछ पश्चिमी महालांचकों ने दार्शनिक कविता में कवित्व कम स्वीकार किया है, परंतु अन्य आलोचकों की राय इसके विपरीत है । स्वयं ब्राउनिंग के काव्योत्कर्ष के संबंध में पाश्चात्य समीक्षकों में बड़ा भेद है । यहाँ उस विन्यासवाद से मनलय नहीं । यह दर्शनियों का देश है । यहाँ की निशा ब्रह्मविद्या है ; “रमो वै मः” कहा भी है । इस देश की जनजात के अनुकूल दार्शनिकता तथा कवित्व की सम्मिश्रित शक्ति के कम विकसित होने के कारण “निरालाजी” की अनेक कविताएँ उस युग की हिंदी रचनाओं में अतुलनीय हुई हैं । उनका “पद्म”, “न्यासनी”, “गमने” आदि कविताएँ ऐसी ही हैं । इनमें कवि की उच्चतम भावगांथ, सुष्मिक्त दार्शनिक विचारों के संयोग से एक नया समस्त उठती है, जैसे मृदु-अनिलतरलित जल में सवेरे की

किरणें पड़ी हो। पर जहाँ कहीं निरालाजी की रचनाओं में दार्शनिकता का ही प्राधिराज्य होने के कारण कविता का कभी दिग्भाई पड़ती है, वहाँ सहृदयता से तत्कार करनेवालों के रचनाएँ विलकृत अन्धी नहीं लगती।

“निरालाजी” की दूसरी बड़ी विशेषता उनकी कविताओं में प्रकाशन तथा निर्वाह का गुण है। स्वयं समालोचक होने के कारण काव्य के बिन्दुबिन्दु करने का उनमें बड़ा शक्ति है। अपनी इस शक्ति का उपयोग वे अपनी रचनाओं में बड़ी सफातापूर्णकर करते हैं।

“पंतजी” गधुर बाणी के बड़े ही कामना तथा मरम-हृदय कवि हैं। उनके मायन का मुख्य विषय प्रेम है। उनकी कविता की मूल रागिनी है श्रीरस की निवृत्ति। “अंगि”, “उद्वास”, “श्रौत”, “अनेक” आदि उनकी अनेक रचनाओं में प्रेम की ही शुद्ध धारा बहती है। “पंतजी” की कई रचनाओं में कवित्व पराकाष्ठा तक पहुँचा मिलता है। उनकी कल्पन-शक्ति तथा विषय के अनुरूप सूक्ष्मता की क्षमता आधुनिक हिंदी कवियों में अद्वितीय तथा अधिष्ठित बलियम कीकी के जोड़ की पाई जाती है। परंतु कुछ छोड़कर ‘पंतजी’ की रचनाओं में कल्पना की उड़ानों का दलकापन है—जीवन की गम्भीरता उतनी नहीं। उन रचनाओं में “पंतजी” गधुर कहानाओं के कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे सुनक-समाज के मन प्रिय कवि हैं।

परन्तु ‘पंतजी’ की “परिवर्तन-शीर्षक कविता ! गम्भीरता-समान्वित उसकी रचना में मानो पंतजी का पुरुषत्व जाग उठा हो, मानो उनकी कोमलता जीवन के कठोर प्रहारों के सामने क्षण-मग्न टिक न सकी हो। रबींद्रनाथ ठाकुर विगत महायुद्ध के बाद जब घोष गण, उन्होंने एक विशाल भूगड को उजड़ा हुआ नग्न, क्षुब्ध पाया ! उस समय सुना जाता है, उन्होंने युद्ध की कल्पना एक विशाल राक्षस के रूप में की, जिमने सर्वसंहारक बनकर, प्रदेश-का-प्रदेश

चाटकर स्वादा कर दिया था। पंतजी ने भी “परिवर्तन” में ऐसी ही अनेक कल्पना-मूर्तियाँ खड़ी की हैं, जो उनकी उच्च प्रतिभा की परिचायक हैं। पंतजी की यह रचना हिंदी-कविता का शृंगार है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। इस रचना में कवि का दृष्टिकोण यद्यपि निराशावादी है किंतु उसकी आस्था माधना पर स्थिर और सुदृढ़ है।

यह हिंदी छायावाद कविता की त्रिमूर्ति है। इनकी गणना बृहस्पति में की गई—रचना-सौष्ठव के विचार से और विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक कृतियाँ उपस्थित करने के विचार से। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विभूतियाँ भी हैं, जिनका नाम ऊपर लिया जा चुका है। पं० गोविंदवल्लभ पंत की “हे अनजान विदेशी आज”—शीर्षक कविता चित्त में अनोखा चमत्कार छोड़ जाती है। पंतजी, मालूम होता है, प्रकृति की रम्य गोद में पले हैं, और उनका जीवन उससे घुल-मिलकर एक हो गया है। सियारामशरणजी की ‘हूँ’ कविता बड़ी करुण और मर्मदाशिनो है। वियोगीजी के “कठोर-कर्तव्य”—शर्षक संवाद में मनोवृत्तियों का मार्मिक चित्रण है, नवीनजी की ‘रक्षा-बंधन’ कविता मुझे बड़ी अच्छी लगी। भगवतीचरणजी की कविताएँ मुझे पहले से अपनी ओर खींच चुकी थीं। इधर “नूरजहाँ की कब्र पर” लिखी गई दुःखगाथा हिंदी में एक ही निकली। ये सब कवि हिंदी की भविष्याशाएँ हैं, इनकी संपूर्ण रचनाएँ इस आशा का आधार !

—प्रो० नंददुलारे वाजपेयी

( माधुरी, अगस्त, १९२६ )

## हिंदी कविता की नई धारा

भक्ति-काल और रीति-काल की चली आती हुई परंपरा के अंग में भारतेन्दुमंडल के प्रभाव से देश-प्रेम और जाति-गौरव की भावना को लेकर एक नूतन परंपरा की प्रतिष्ठा हुई संवत् १९५० से १९७५ तक काव्य की नूतन परंपरा का अनेक विषयस्पर्शी प्रसार अवश्य हुआ, पर द्विवेदीजी के प्रभाव से एक ओर उसमें भाषा को सफाई आई, दूसरी ओर उनका स्वरूप गण्यत् रूपा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर माहायनिरूपक हो गया। अतः संवत् १९७५ से हिंदी कविता में जंग परिवर्तन हुआ और योद्धे 'कायावाद' फैलाया। यह पूर्ववर्ती अर्थात् संवत् १९५० से १९७५ तक की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्य-शैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। अर्थ-भूमि या यत्न-भूमि का तो उसके भीतर बहुत संकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओं को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।

संवत् १९५० से १९७५ तक की कविता में काव्य का स्वरूप खड़ा करनेवाली दोनो बातों की कमी दिखाई पड़ती थी—कल्पना का रंग भी बहुत कम या फीका रहता था और हृदय का वेग भी लूट खुलकर नहीं व्यंजित होता था। इन बातों की कमी परंपरागत ब्रजभाषा-काव्य का आनंद लेनेवालों को भी मालूम होती थी और बँगला या अंगरेजी की कविता का परिचय रखनेवालों को भी। अतः खड़ी



मेरे सर का छिपा खजाना, अहंकार का भाव पुराना,  
बना आज तू मुझे दिवाना,  
तप्त श्वेत बूँदों में ढर जा । ( सन् १९१७ )

( ग ) जड़ संध्या को हट जावेगी भीड़ महान्  
तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान ।

शून्य कक्ष के अथवा कोने में ही एक  
बैठ तुम्हारा करूँ वहाँ नीरव अभिषेक । ( १९२० )

पं० बदरीनाथ भट्ट भी सन् १९१३ के पहले ही भाव-व्यंजक और  
अनूठे गीत रचते आ रहे थे । दो पंक्तियाँ देखिए—

दे रहा दीपक जलकर फूल,

रोपी उज्ज्वल प्रभा-गताका अंधकार हिय हूल ।

श्री पदुमलाल पुजालाल बखशी के भी इस ढंग के कुछ गीत  
सन् १९१५-१६ के आस-पास मिलेंगे ।

ये कवि जगत् और जीवन के विस्तृत क्षेत्र के बीच नई कविता,  
का संचार चाहते थे । ये प्रकृति के साधारण, असाधारण सब रूपों पर  
प्रेम-दृष्टि डालकर, उसके रहस्य-भरे सच्चे संकेतों को परखकर, भाषा  
को अधिक चित्रमय, सजीव और मार्मिक रूप देकर कविता का एक  
अकृत्रिम, स्वच्छंद मार्ग निकाल रहे थे । भक्तिक्षेत्र में उपास्य की  
एकादेशीय या घर्मविशेष में प्रतिष्ठित भावना के स्थान पर सार्वभौम  
भावना की ओर बढ़ रहे थे जिसमें सुंदर रहस्यात्मक संकेत भी रहते  
थे । अतः हिंदी-कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्हीं को—विशेषतः  
श्री मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पांडेय को—समझना चाहिए ।  
इस दृष्टि से छायावाद का रूप-रंग खड़ा करनेवाले कवियों के संबंध  
में अंगरेजी या बँगला की समीक्षाओं से उठाई हुई इस प्रकार की  
पदावली का कोई अर्थ नहीं कि 'इन कवियों के मन में एक आँधी  
उठ रही थी जिसमें आंदोलित होते हुए वे उठे जा रहे थे; एक नूतन  
वेदना की छटपटाहट थी जिसमें सुन्न की मीठी अनुभूति भी लुकी



की विशृंखलता, चित्रमयी भाषा और गधुमयी कल्पना को ही साध्य मान कर चले। शैली की इन विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना में ही लीन हो जाने के कारण अर्थभूमि के विस्तार की ओर उनकी दृष्टि न रही—विभाव-पक्ष या तो शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह गया। इस प्रकार प्रसरणोन्मुख काव्य-क्षेत्र बहुत कुछ संकुचित हो गया। असीम और अज्ञात प्रियतम के प्रति अत्यंत चित्रमयी भाषा में अनेक प्रकार के प्रेमोद्गारों तक ही काव्य की गति-विधि प्रायः बँध गई। हृत्तंत्री भंकार, नीरव संदेश, अभिमार, अनंत-प्रतीक्षा, प्रियतम का दवे पाँव ग्राना, आँखमिचौनी, मूढ़ में भ्रमना, विभोर होना इत्यादि के साथ साथ शराब प्याला, साकी आदि सूफी कवियों के पुराने सामान भी इकट्ठे किए गए। कुछ हेरं-फेर के साथ वही बँधी पदावली, वेदना का वही प्रकांड प्रदर्शन, कुछ विशृंखलता के साथ प्रायः सब कविताओं में मिलने लगा।

अज्ञेय और अत्यक्त को अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर काम-धातना के शब्दों में प्रेम-व्यंजना भारतीय काव्य-धारा में कभी नहीं चली, यह स्पष्ट बात “हमारे यहाँ यह भी था, वह भी था” की प्रवृत्तियों को अच्छी नहीं लगती। इससे खिन्न होकर वे उपनिषद से लेकर तंत्र और योग-मार्ग तक की दौड़ लगाते हैं। उपनिषदों में आप ह्रुष आत्मा के पूर्ण आनन्दस्वरूप के निर्देश, ब्रह्म नंद की अपरिमेयता को समझाने के लिए रघो-पुरुष-सम्बन्धवाले दर्शन या उदमाएँ, योग के सदखदल कमल आदि की भवना के बीच वे सरे संतोष के साथ उद्धृत करते हैं। यह सब करने के पक्षे उन्हें समझना चाहिए कि जो बात ऊपर कही गई है उसका तात्पर्य क्या है। यह कौन कहता है कि मत-मतार्तों की साधना के क्षेत्र में रहस्य-मार्ग नहीं चले ? योग रहस्य-मार्ग है, तंत्र रहस्य-मार्ग है, तद्वद्वत् भी रहस्य-मार्ग है। पर ये सब साधनात्मक हैं; प्रकृत भाव-भूति या काव्य-भूमि के भीतर चले हुए मार्ग नहीं। भारतीय

परम्परा का कोई कवि मथुरा, अनाहत आदि चर्को को लेकर तरह तरह के रंगमण्डल बनाने में प्रवृत्त नहीं हुआ।

संदिताओं में दो अनेक प्रकार की बातों का संग्रह है। उपनिषदों में ब्रह्म और जगत्, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में कई प्रकार के मत हैं। वे काव्य-ग्रंथ नहीं हैं। उनमें इधर-उधर काव्य का जो स्वरूप मिलता है वह ऐतिहासिक, कर्मकाण्ड, दार्शनिक चिन्तन, सांप्रदायिक गुण-वाचना, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना इत्यादि बहुत-सी बातों में उलझा हुआ है। विशुद्ध काव्य का निचरा हुआ स्वरूप पंथे अलग हुआ। रामायण का आदिकाव्य कहलाना साफ यही सूचित करता है। संदिताओं और उपनिषदों को कभी किसी ने काय नहीं कहा। अब सीधा सबल यह रह गया कि क्या बल्मीकि ने लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक कोई एक भी ऐसा कवि है जिसने अशेष और अव्यक्त को अशेष और अव्यक्त ही रखकर प्रियतम बन या हो और उसके प्रति कामुकता के शब्दों में प्रेम व्यंजना की हो। यथारदास जिस प्रकार हमारे यहाँ के ज्ञानवाद और सूक्तियों के भावात्मक रहस्यवाद को लेकर चले, उसी भावात्मक रहस्य-परम्परा का यह नूतन भक्त-भंगी और लक्ष्मिकता के साथ आविर्भाव है। बहुत सम्शोध्य है, कुछ लोगों को अत्यंत रुचिग्रह है यह और बात है।

प्रणय-वासना का यह उद्गार आध्यात्मिक पदों में ही छिपाने रह सका। हृदय की सारी काम-वासनाएँ, इन्द्रियों के सुख-विलास की मधुर और सम्शोध्य सामग्री के बीच, एक चैथी हुई रुढ़ि पर व्यक्त होने लगा। इस प्रकार रहस्यवाद से सम्बन्ध न रखनेवाली कविताएँ भी छुआवादा ही कही जाने लगीं। अतः 'छुआवादा' शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्य-शैली के सम्बन्ध में भी प्रतीकवाद के अर्थ में होने लगा।

छुआवादा की इस धारा के आने के साथ ही साथ अनेक लेखक नवयुग के प्रतिनिधि बनकर योरोप के साहित्य-क्षेत्र में प्रवर्तित काव्य

और कला-सम्बन्धी अनेक नए-पुराने सिद्धांत सामने लाने लगे । कुछ दिन 'फलावाद' की धूम रही और कहा जाता रहा "कला का उद्देश्य कला ही है ।" इस जीवन के साथ काव्य का कोई सम्बन्ध नहीं ; उसकी दुनिया ही और है । किसी कव्य के मूल्य का निर्धारण जीवन की किसी वस्तु के मूल्य के रूप में नहीं हो सकता । काव्य तो एक लोकातीत वस्तु है । कवि एक प्रकार का रहस्यदर्शी या पैगम्बर है । इसी प्रकार क्रोचे के अभिव्यजनावाद को लेकर बनाया गया कि "काव्य में वस्तु या वयं विषय कुछ नहीं ; जो कुछ है वह अभिव्यंजना के ढंग का अनूठापन है ।" इन दोनों धारों ने अनुसार काव्य का लक्ष्य उसी प्रकार सौंदर्य की सृष्टि या योजना कहा गया है जिस प्रकार बेल-बूटे या नकाशों का । कवि-कल्पना प्रत्यक्ष जगत् में अलग एक रमणीय स्वप्न घोषित किया जाने लगा और कवि सौंदर्य-भावना के मद में भ्रमनेवाला एक लोकातीत जीव । कला और काव्य की प्रेरणा का सम्बन्ध स्वप्न और कामवासना में बनानेवाला मत भी इधर-उधर उद्भूत हुआ । सारांश यह कि इस प्रकार के अनेक वद-प्रवाद पत्र-पत्रिकाओं में निकलते रहे ।

झायावाद की कविता की पहली दौड़ तो वगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई । पर उन कविताओं को बहुत-कुछ गति-विधि अंगरेजी वाक्य-खंडों के अनुवाद द्वारा संवर्धित देव अंगरेजी काव्यों में परिचित हिंदी-कवि सीधे अंगरेजी में ही तरह तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद जगद जगद अपनी रचनाओं में जड़ने लगे । 'कनक प्रभात', 'विचारों में यत्नों की सौंस', 'स्वर्ण समय', 'प्रथम मधुबाल', 'तारिकाओं की तान', 'स्वप्निल कांति' ऐसे प्रयोग अजायबघर के जानवरों की तरह उनके रचनाओं के भीतर इधर-उधर भिजने लगे । निराला जी की शैली कुछ अलग रही । उसमें लाक्षणिक वैचित्र्य का उतना आग्रह नहीं पाया जाता, जितना पदावली की तड़क-भड़क और परे वाक्य

के वैलक्षण्य का । केवल भाषा के प्रयोग-वैचित्र्य तक ही बात न रही । ऊपर जिन अनेक योग्योप्य वादों और प्रवादों का उल्लेख हुआ है उन सबका प्रभाव भी छायावाद कही जानेवाली कविताओं के स्वरूप पर कुछ न कुछ पड़ता रहा ।

कलावाद और अभिव्यंजनावाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान हो प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अपस्तुतों को योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई । प्रकृति के नाना रूप और व्यापार इसी अपस्तुत योजना के काम में लाए गए । सोचे उनके समझ की ओर हृदय प्रवृत्त न दिखाई पड़ा । पतंगी अलक्ष्य प्रकृति के कमनीय रूपों की ओर कुछ रुककर हृदय रमाते पाए गए ।

दूसरा प्रभाव यह देखने में आया कि अभिव्यंजना-प्रणाली या शैली की विचित्रता ही अब कुछ समझी गई । नाना अर्थ-भूमियों पर काव्य को प्रसार कर-सा गया । प्रेम-क्षेत्र—कहीं आध्यात्मिक, कहीं तौकिक—के भीतर ही कल्पना की चित्र-विध-पिनी मीठा के साथ प्रकांड वेदना, आत्मसुख, उन्माद आदि की व्यंजना तथा मीठा से दौड़ी हुई प्रिय के कशलों पर की ललाई, हाव-भाव, मधुस्वाध तथा अश्रु-प्रवाह इत्यादि के रँगोले वर्णन करके ही अनेक कवि अब तक पूर्ण वृत्त दिखाई देते हैं । जगत् और जीवन के नाना मार्मिक पक्षों की ओर उनकी दृष्टि नहीं है । बहुत से नर रसिक प्रत्येक गंव-युक्त, चिपचिपाती और भिनभिनाती भाषा को ही सब कुछ समझने लगे हैं । लक्षणाशक्ति के सहारे अभिव्यंजना-प्रणाली या काव्य-शैली का अवश्य बहुत अच्छा विकास हुआ ; पर अभी तक कुछ बेधे हुए शब्दों की रुद्धि चली चल रही है । रीति-कान की शृंगारी कविता की भरमार की तो इतनी निंदा की गई पर वही शृंगारी कविता—कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान—

छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ। इसमें संदेह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि कव्य का स्वरूप संघटित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। भाषा के परिमार्जनकाल में किस प्रकार खड़ी बोली की कविता के सुखे-सूखे रूप से ऊबकर कुछ कवि उसमें सरसता लाने के चिह्न दिखा रहे थे यह कहा जा चुका है। अतः आध्यात्मिक रहस्यवाद के नूतन रूप हिंदी में आता तो भी शैली और अभिव्यंजना-पद्धति की उक्त विशेषताएँ क्रमशः स्फुटित होतीं और उनका स्वतंत्र विकास होता। हमारी काव्य-भाषा में लाक्षणिकता का कैसा अनूठा आभास घनानंद की रचनाओं में मिलता है, यह पाठक जानते ही होंगे।

छायावाद जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम लेकर चला है यहाँ तक तो रहस्यवाद के ही अन्तर्गत रहा है। उसके आगे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद नाम की काव्य-शैली के रूप में गृहीत होकर भी वह अधिकतर प्रेम-गान ही करता रहा है। हर्ष की बात है कि अब कोई कवि उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलकर जगत् और जीवन के और और मार्मिक पक्षों की ओर भी बढ़ते दिखाई दे रहे हैं। इसी के साथ ही काव्य-शैली में प्रतिक्रिया के प्रदर्शन या नएपन की नुमायश का शौक भी घट रहा है। अब अपनी भाषा की विशिष्टता को विभिन्नता को हृदय पर ले जाकर दिखाने की प्रवृत्ति का वेग क्रमशः कम तथा रचनाओं को सुव्यवस्थित और अर्थगर्भित रूप देने की रुचि क्रमशः अधिक होती दिखाई पड़ती है।

स्व० जयशंकरप्रसाद जी अधिकतर तो विरह-वेदना के नाना सजीले शब्द-पथ निकालते तथा लौकिक और अलौकिक प्रणय का मधु गान ही करते रहे, पर 'लहर' में कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की चित्रमयी शैली को विस्तृत अर्थभूमि पर ले

छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ। इसमें संदेह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यञ्जना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि कव्य का स्वरूप संघटित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। भाषा के परिमार्जनकाल में किस प्रकार खड़ी बोली की कविता के रुखे-सूखे रूप से ऊबकर कुछ कवि उसमें सरसता लाने के चिह्न दिखा रहे थे यह कहा जा चुका है। अतः आध्यात्मिक रहस्यवाद के नूतन रूप हिंदी में आता तो भी शैली और अभिव्यञ्जना-पद्धति की उक्त विशेषताएँ क्रमशः स्फुटित होतीं और उनका स्वतंत्र विकास होता। हमारी काव्य-भाषा में लाक्षणिकता का कैसा अनूठा आभास घनानंद की रचनाओं में मिलता है, यह पाठक जानते ही होंगे।

छायावाद जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम लेकर चला है यहाँ तक तो रहस्यवाद के ही अन्तर्गत रहा है। उसके आगे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद नाम की काव्य-शैली के रूप में गृहीत होकर भी वह अधिकतर प्रेम-गान ही करता रहा है। इर्ष की बात है कि अब कोई कवि उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलकर जगत् और जीवन के और और मार्मिक पक्षों की ओर भी बढ़ते दिखाई दे रहे हैं। इसी के साथ ही काव्य-शैली में प्रतिक्रिया के प्रदर्शन या नएपन की नुमायश का शौक भी घट रहा है। अब अपनी भाषा की विशिष्टता को विभिन्नता को हृद पर ले जाकर दिखाने की प्रवृत्ति का वेग क्रमशः कम तथा रचनाओं को सुव्यवस्थित और अर्थगर्भित रूप देने की रुचि क्रमशः अधिक होती दिखाई पड़ती है।

स्व० जयशंकरप्रसाद जी अधिकतर तो विरह-वेदना के नाना सजोले शब्द-पथ निकालते तथा लौकिक और अलौकिक प्रणय का मधु गान ही करते रहे, पर 'लहर' में कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की चित्रमयी शैली को विस्तृत अर्थभूमि पर ले



जाने का प्रभाव भी उन्होंने किया और जगत् के वर्तमान दुःख-द्वेषपूर्ण मानव जीवन का अनुभव करके इस 'जलो जगत् के वृंदावन बन जाने' की आशा भी प्रकट की तथा 'जीवन के प्रभाव' को भी बताया। इसी प्रकार श्री सुमित्रानन्दन पंत ने 'गुंजन' में सौंदर्य-चयन से आगे गद् जीवन के नित्य स्वरूप पर भी दृष्टि डाली है ; सुख-दुःख दोनों के साथ अपने हृदय का सामंजस्य किया है और 'जीवन की गति में भी लय' का अनुभव किया है। बहुत अन्धता होता यदि पंतजी उसी प्रकार जीवन की अनेक परिस्थितियों को नित्य रूप में लेकर अपनी सुन्दर, चित्रमयी प्रतिभा को अग्रसर करते जिस प्रकार उन्होंने 'गुंजन' और 'युगांत' में किया है। 'युग-वाणी' में उनकी पायी बहुत-कुछ वर्तमान आंदोलनों की प्रतिध्वनि के रूप में परिणत होती दिखाई देती है।

निराला जी की रचना का क्षेत्र तो पहले से ही कुछ विस्तृत रहा। उन्होंने जिस प्रकार 'तुम' और 'मैं' में सब रहस्यमय 'नाद वेद छाकार सार' का गान किया, 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में सन्मद प्रणय-चेष्टाओं के पुष्प-चित्र खदे किए उसी प्रकार 'जागरण-बीणा' बजाई ; इस जगत् के बीच विषवा की विधुर और करुण मूर्ति लखी की और इधर आकर 'इलाहाबाद के पथ पर' एक पत्थर तोड़ती दीन स्त्री के माथे पर के भ्रम-संकेत दिख'ए। सारांश यह कि अथ शैली के वैलक्षण्य-द्वारा प्रतिक्रिया-प्रदर्शन का वेग कम हो जाने से अर्थभूमि के रमणीय प्रसार के चिह्न भी छायावादी कहे जानेवाले कवियों की रचनाओं में दिखाई पड़ रहे हैं।

इधर हमारे साहित्य-क्षेत्र की प्रवृत्तियों का परिचालन बहुत-कुछ पश्चिम से होता है। कला में 'व्यक्तित्व' की चर्चा खूब फैलने न कुछ कवि लोक के साथ अपना मेल न मिलने की अनुभूति की बड़ी लम्बी-चौड़ी व्यंजना, कुछ मार्मिकता और फकड़पन के साथ, करने हैं। भाव-क्षेत्र में असामंजस्य की इस अनुभूति का भी एक

रमान अवश्य है, पर वह कोई व्यापक या स्थायी मनोवृत्ति नहीं। हमारा भारतीय काव्य उस भूमि की ओर प्रवृत्त रहा है जहाँ जाकर प्रायः सब 'हृदयों का नेल हो जाता है। वह मानवजन्य को लेकर—अनेकता में एकता को लेकर—चलता रहा है, असांगजन्य को लेकर नहीं।

स्व० रामचंद्रजी शुक्ल

## रहस्यवाद की विवेचना

रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसार चक्र का प्रवर्तन किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा होता है। इस बात का अनुभव मनुष्य आदि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी। परंतु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नहीं दिखाई दे सकती जिस प्रकार जगत के अन्य दृश्य रूपों की; और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार माध्यम विचार-धारा के द्वारा हो सकता है जिस प्रकार इन दृश्य रूपों का होता है। अपनी लगन से जो इन क्षेत्र में सिद्ध हो गए हैं उन्होंने जब-जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब तब अपनी उक्तियों को स्पष्टता देने में अपने आपको असमर्थ पाया है। क्योंकि ने वह स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति 'गूँगे का सा गुड़' है—

अकथ कहानी प्रेम की, कल कली न जग ।

यही रहस्यवाद का मूल है। वेद और उपनिषदों में रहस्यवाद की भलक विद्यमान है। गीता में भगवान के मुँह से उनकी विभूति का जो वर्णन कराया गया है, वह भी अत्यंत रहस्यपूर्ण है।

परमात्मा को पिता, माता, प्रिया, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप में देखना रहस्यवाद ही है; क्योंकि लौकिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है। आदर्श पुरुषों में परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनको अवतार मानने के मूल में भी रहस्यवाद ही है। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसे मस्तक नभाना आदिम रहस्यवाद है।

परमात्मा के वितृत्व की भावना बहुत प्राचीन काल के वेदों ही में मिलने लगती है। ऋग्वेद की एक ऋचा में 'यो नः पिता जनिता यो निधाना' कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है। वेदों में परमात्मा को माना भी कहा गया है—'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविष' परमात्मा के मातृ-वितृत्व से प्राणियों के भ्रान्त की भावना का उदय होता है—अज्येष्ठासौ अकनिष्ठासौ एते भ्रातृवो'। बहुत पीछे के इसी ईश्वरवाद में परमात्मा के पिता और भ्रान्त की यही भावना पाई जाती है; अतएव परिणामी रहस्यवाद में भी इस भावना का प्राबल्य है। कबीर में भी यह भावना मिलती है—

पाप राम गया अब हूँ शरण तिहारो ।

इन्हीं परमात्मा को माँ' भी कहा है—

हरि जननी मैं बालिक तेरा ।

परन्तु भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवादमूलक होने में है जो भारतीयों की ब्रह्मविद्या का फल है। उपनिषदों और गीता का रहस्यवाद यही रहस्यवाद है। जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचता है तब भी ऐसा वास्तव है तब तो अग्रगण्य ही वह इस रहस्यवाद को खोज सकता है। गिनन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता

के क्षेत्र में जाकर कलरना और भाषुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। सर्वात्मवादो कवि के रहस्योद्भावी मानस में संसार ऊँची रूप में प्रतिबिम्बित नहीं होता जिस रूप में साधारण मनुष्य उसे देखता है। वह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखंड संबंध देखता है जिसको चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हुए जायसी ने जगत् के सब रूपों को दिखलाया है। जगत् के नाना रूप उसकी दृष्टि में परमात्मा से भिन्न नहीं हैं। उसी के भिन्न-भिन्न स्पर्श रूप हैं। स्वातंत्र्य के अवतार, स्त्रीत्व का आध्यात्मिक मूल समझनेवाले अँगरेजी के कवि शैली को भी सर्व-त्मवाद। रहस्यवाद ही मार्ग करते हुए काननों में, झरनों में, उन पुराणों पर ग-गंध में जो उस दिव्य-चुम्बन के सुखस्पर्श से सोंपे हुए कुल्लु परीते से शुभ्र पवन को उसका परिचय दे रहे हैं इसी प्रकार मंद या तीव्र समीर में, प्रत्येक आते-जाते मेघ खंड की झड़ी में, बर्षत-कालीन विदग्धों के कलकूजन में और सब ध्वनियों और स्तब्धता में भी अपनी प्रियतमा की मधुर वाणी सुनाई दे। कवीर में ऊपर परिगणित कुछ अन्य रहस्यवादी भावनाओं के होते हुए भी प्रधानता इसी रहस्यवाद की है। मुसलमान कवियों की प्रेम ख्यानक परम्परा के जायसी एक जगमगाते स्तन हैं। वे रहस्यवादी कवियों की ही एक लड़ी हैं जिनमें सूफियों के मार्ग से होते हुए भारतीय सर्वात्मवाद आया है।

सर्वात्मवाद-मूलक रहस्यवाद में 'माधुर्य भाव' का उद्देश्य हुआ, जो कवीर और प्रेमख्यानक सब मुसलमान कवियों में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियों की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिकों ने परमात्मा को पुरुष और जगत् को स्त्री रूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में भावना की जाती है और जगत् के नाना रूप स्त्री रूप में देखे जाते हैं। मीराबाई ने तो केवल कृष्ण को ही पुरुष माना है,



मन प्रवीत न प्रेम रस ना इस मन में रंग ।

क्या जादूँ उस वीन यूँ कैसे रहसो रंग ।

इसमें साक्षात्कार की महत्ता का दृढाभास है भी एक साधारण पटना नहीं है ।

ज्यों ज्यों लोकात्मा को अपनी परमात्मिकता का अनुभव होता जाता है, त्यो त्यो उसका भय जाता रहता है लौकिक भाषा में इसी को श्रार इस पद में इशारा है—

अब तोदि जान न दैहूँ राम विपारे । ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे ।

यह प्रेम की टिटार है ।

परमात्मा ने मिनने के लिए ऐसी 'ऊँची गैल, राह रपटीली' नहीं तै करना पड़ती जहाँ 'पोंव नदी ठहराय' । यह तो घर बैठे मिल जायेंगे, पर उसके लिए पहुँची हुई लगन चाहिए, क्योंकि परमात्मा तो दृश्य ही में है—

सहस्र दिनन के बिहुरे हरि पाये माग बढ़े घरि बैठे ।

कबीरदास के नाम में लोगों की जिह्वा पर जो यह पद—

मो को कहीं दूँ दे बंदे मैं तो तेरे पास में ।

न मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना कामे कैलास में ॥

सहस्र दिनों में जेदा चला आ रहा है, उसका भी यही भाव है । जायसी ने यही भाव यों प्रकट किया है—

विठ हिरदय मई मेंट न होई, को रे मिलाव, कहीं केहि रोई ॥

रहस्यमय उक्तियों की रहस्यात्मकता उनके लोकनियोजित शब्दार्थ में नहीं है । सम अर्थ का मानने में उनकी रहस्यात्मकता जाती रहती है; उनका संकेत मात्र ग्रहण करना चाहिए । मूर्ति को परमात्मा मानकर सबका पूजन इसी लिए करना चाहिए कि ईश्वर-प्राप्ति में आगे की सीढ़ी सदन में चढ़ सकें, क्योंकि साधारणतः सब लोग परमात्मा यः ब्रह्म का ठीक ठीक स्वरूप समझने में नितांत असमर्थ होते हैं । अतः मूर्तिपूजा के द्वारा मानो मनुष्य को ब्रह्म के भी साक्षात्कार की

प्रारम्भिक शिक्षा मिलती है । उसमें आने बन्दना सम्बन्धन परमात्मा को परमात्मा मानने में फिर कोई रहस्य नहीं जाना । शैशवों ने परमात्मा के पितृत्व भाव की उगी समय इनिशी कर दी जब उमा की लौकिक अर्थ में परमात्मा का पुत्र मान लिया । राम और कृष्ण को नादात् परमात्मा ही मानने के कारण तुलसी और नूर में अवतारवाद की मूलीभूत रहस्यभावना नहीं आ पाई है । सभी संप्रदाय ने मनुष्यों को उच्चमुच स्त्री मानकर और उनके नाम भी स्त्रियों जैसे रक्खकर और यहाँ तक कि उनसे प्रवृत्तमती स्त्रियों का अभिनय करारकर 'माधुर्य भाव' रहस्यवाद को वास्तववाद का रूप दे दिया । रहस्यवाद के वास्तववाद से पतित हो जाने के कारण ही सद्गुदेश्य से प्रवर्तित अनेक धर्म-संप्रदायों में इंद्रिय-लोलुपता का नाकी नृत्य देखने में आता है । रहस्यवादी कवियों का वास्तववादियों ने इसी बात में भेद है कि वास्तववादी कवि अपने विषय का यथातथ्य वर्णन करते हैं, और रहस्यवादी केवल संकेत मात्र कर देते हैं, अपने वर्य विषय का आभास भर दे देते हैं । उनमें जो यह धुँधलापन पाया जाता है, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है । परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र ही दिया जा सकता है । इसके लिए वे व्यंजनावृत्ति से अविज्ञात काम लिया करते हैं और चित्राखान उनका प्रधान उपादान होता है । उनका बातें अन्योक्ति के रूप में, हुआ करते हैं । किसी प्रत्यक्ष व्यापार के चित्र को लेकर वे उससे दूसरे परोक्ष व्यापार के चित्र की व्यंजना करते हैं । इसी से रहस्यवादी, कवियों में वास्तववादियों की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य अधिक होता है ।

## रहस्यवाद : उसकी व्याख्या

रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अत्रौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहता है, और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के अनंत वैभव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन में केवल उसी दिव्य शक्ति का अनंत तेज अंतर्हित हो जाता है। और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती रहती है। यही दिव्य संयोग है ! आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाता है कि आत्मा में परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों का प्रदर्शन।

इस संयोग में एक प्रकार का उन्माद होता है, नशा रहना है। उस एकांत सत्य से, उस दिव्य शक्ति से जीव का ऐसा पम दो जाता है कि वह अपनी सत्ता परमात्मा की सत्ता में अंतर्हित कर देता है। उस प्रेम में चंचलता नहीं रहती, अस्थिरता नहीं रहती। वह प्रेम अमर होता है।

ऐसे प्रेम में जीव की सारी इंद्रियों का एकीकरण हो जाता है। सारी इंद्रियों से एक स्वर निकलता है और उनमें अपने प्रेम की वस्तु के पाने की लालसा समान रूप से होने लगती है। इंद्रियाँ अपने आराध्य के प्रेम को पाने के लिए उत्सुक हो जाती हैं और उनकी उत्सुकता इतनी बढ़ जाती है कि वे उसके विधिगुणों का ग्रहण समान रूप से करती हैं। अंत में वह सीमा इस स्थिति को पहुँचती है



कि भावोन्माद हैं वस्तुओं के विविध गुण एक ही इन्द्रिय पाने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। ऐसी दशा में शायद इन्द्रियाँ भी अपना कार्य बदल देती हैं। एक बार प्रोफेसर जेम्स ने यही समस्या आदर्श-वादियों के सामने सुलझाने के लिए रखी थी कि यदि इन्द्रियाँ अपनी अपनी कार्य-शक्ति एक दूसरे से बदल लें तो संसार में क्या परिवर्तन हो जायेंगे ? उदाहरणार्थ, यदि हम रंगों को सुनने लगे और ध्वनियों को देखने लगे तो हमारे जीवन क्या अंतर आ जायगा ! इसी विचार के सहारे हम सेन्ट मार्टिन की रहस्यवद से सम्बन्ध रखने-वाली परिस्थिति समझ सकते हैं जब उन्होंने कहा था ! मैंने उन फूलों को सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियों को देखा जो जागृतमान थीं।

अन्य रहस्यवादियों का भी कथन है कि उस दिव्य अनुभूति में इन्द्रियाँ अपना काम करना भूल जाती हैं। वे निस्तब्ध-सी होकर अपने कार्य व्यापार हो को नहीं समझ सकतीं। ऐसी स्थिति में आश्चर्य ही क्या कि इन्द्रियाँ अपना कार्य अव्यवस्थित रूप से करने लगे। इसी बात से हम उस दिव्य अनुभूति के आनंद का परिचय पा सकते हैं जिसमें हमारी सारी इन्द्रियाँ मिलकर एक हो जाती हैं अपना कार्य-व्यापार भूल जाती हैं। जब हम उस अनुभूति का विश्लेषण करने बैठते हैं तो उसमें हमें न जाने कितने गूढ़ रहस्यों और आश्चर्यमय व्यापारों का पता लगता है।

रहस्यवाद के उन्माद में जीव इन्द्रिय-जगत से बहुत ऊपर उठ कर विचार-शक्ति और भावनाओं का एकीकरण कर अनंत और अंतिम प्रेम के आघात से मिल जाना चाहता है। यही उसकी साधना है, यही उसका उद्देश्य है। उसमें जीव अपनी सत्ता को खो देता है। मैं, मेरा, सर्वत्र के लिए अंतर्हित हो जाते हैं। वहाँ जीव अपना आधिपत्य नहीं रख सकता। एक मेवक की भाँति अपने को स्वामी के चरणों में भुजा देना चाहता है। मंदार के इन वाह्य बंधनों का

का विनश्वर आत्मा ऊपर उठती है। हृदय की भावना साकार बन कर ऊपर की ओर जाती है जेवना इतिवृत्ति कि यः अयन मत्ता एक असीम शक्ति के आगे आता है। हृदय के उस शक्ति में कोई रक्तार्थ नहीं, संसार की कोई भावना नहीं, कोई विधि नहीं, किसी ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं, जेवना हृदय के प्रेम की पूर्ति है। और ऐसा हृदय वह भीत है जिसमें जेवना भावनाओं का केंद्र ही नहीं बरन् जीवन की वह अंतरंग अभिव्यक्ति है जिसके भटने संसार के गण्य पदार्थों में उसकी मत्ता निर्मागित होती है। अयन मत्ता के सामने जीव अपने को इतने समीप ला देता है कि उसका साधारण न साधारण भावना में उस अनन्त शक्ति की अनुभूति होने लगती है। अंग्रेजी के एक कवि चोलरिज ने इसी भावना को इस प्रकार प्रकट किया है:—

"हम अनुभव करते हैं कि हम कुछ नहीं हैं  
क्योंकि तू सब कुछ है और सब कुछ तुझ में है।

हम अनुभव करते हैं कि हम कुछ हैं,

वह भी तुझसे प्राप्त हुआ है

हम जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं

परन्तु तू हमें अस्तित्व प्राप्त करने में सहायक होगा

तेरे पवित्र नाम की जय हो !

कबीर की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियाँ इस विचार को कितने सरल और स्पष्ट रूप से सामने रखती हैं:—

लोका जानि न भूलौ भाई

खालिक खलक, खलक में खालिक

सब घट रह्यो समाई ।

अतएव हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'रहस्यवाद' अपने नग्न स्वरूप में एक अलौकिक विज्ञान है जिसमें अनन्त सम्बन्ध की भावना का प्रादुर्भाव होता है और रहस्यवादी वह व्यक्ति है जो इस



शारीरिक अवरोधों की परवाह नहीं है ।

वह ईश्वर के समीप पहुँचता है और दिव्य विभूतियों को देखकर चकित हो जाता है । यह रहस्यवादी की प्रथम परिस्थिति है । इस परिस्थिति का वर्णन कबीर ने बड़ी सुन्दर रीति में किया है:—

घट घट में रटना लागि रही,

परघट हुआ अक्षय री ।

वहुँ खोर हुआ, कहुँ साह हुआ,

कहुँ बाढ़न है कहुँ मेख जो ॥

तात्पर्य यह है कि यहाँ संसार की सभी वस्तुएँ अनंत शक्ति में विधाम पाती हैं और सभी अनंत सत्ता में आकर मिला जाती हैं । यहाँ रहस्यवादी ने अपने लिए कुछ भी नहीं रुका है, वह चुप है । उसे ईश्वर की इस अनंत शक्ति पर आश्चर्य-सा होता है । वह मौन होकर इन बातों को देखता-सुनता है । यद्यपि ऐसे समय वह अपना व्यक्तित्व भूल जाता है पर ईश्वर की अनुभूति स्वयं अपने हृदय में पाने में असमर्थ रहता है । इसे हम रहस्यवादी की प्रथम स्थिति कहेंगे ।

द्वितीय स्थिति तब आती है जब आत्मा परमात्मा से प्रेम करने लग जाती है । भावनाएँ इतनी तीव्र हो जात हैं कि आत्मा में एक प्रकार का उन्माद या पागलपन छा जाता है । आत्मा मानों प्रकृति का रूप रख पुरुष—आदि पुरुष—से प्यार करता है । संसार की अन्य वस्तुएँ उसकी नजर में हट जाती हैं । आश्चर्य-चकित होने की अवस्था निकल जाती है और रहस्यवादी चुपचाप अपने आराध्य की प्यार करने लग जाता है । वह प्यार इतना प्रबल होता है कि उसके समक्ष विश्व की कोई चीज नहीं ठहर सकती । वह प्रेम बरसात के उस प्रबल नाले की भाँति होता है जिसके सामने कोई भी वस्तु नहीं रुक सकती । पेड़, पत्थर, झाड़, भँवड़ा सब उस प्रवाह में बह पाते हैं । उसी प्रकार इस प्रेम के आगे कोई भी बाधना नहीं ठहर

सकती। सभी भाषनाएँ, हृदय की सभी वासनाएँ बड़े जोर से एक ओर को बह जाती हैं और एक—केवल एक—भाव रह जाता है, और वह है प्रेम का प्रबल प्रवाह। जिन प्रकार किसी जल-प्रपात के शब्द में समीप के सभी छूटे-छोटे स्वर अन्तर्हित हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार उस ईश्वरीय प्रेम में सारे विचार या तो लुप्त हो जाते हैं, अथवा उसी प्रेम के बहाव में बह जाते हैं। फिर कोई भावना उस प्रेम के प्रबल प्रवाह के रोकने को आगे नहीं आ सकती।

इसके पश्चात् रहस्यवादियों की तीसरी स्थिति आती है जो रहस्यवाद की चरम सीमा कहला सकती है। इस दशा में आत्मा और परमात्मा का इतना एकीकरण हो जाता है कि फिर उनमें कोई भिन्नता नहीं रहती। आत्मा अपने में परमात्मा का अस्तित्व मानती है और परमात्मा के गुणों को प्रकट करती है। जिन प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में आग और लोहे का एक गोला, ये दोनों भिन्न हैं पर जब आग से तपाए जाने पर गोला भी लाल होकर अग्नि का स्वरूप धारण कर लेता है तब उस लोहे के गोले में वस्तुओं के जलाने की वही शक्ति आ जाती है जो आग में है। यदि गोला आग से अलग भी रख दिया जाय तो भी वह लाल स्वरूप रखकर अपने चारों ओर आँच फेकता रहेगा। यही हाल आत्मा का परमात्मा के संसर्ग से होता है। यद्यपि प्रारंभिक अवस्था में माया के वानावरण में आत्मा और परमात्मा दो भिन्न शक्तियाँ जान पड़ती हैं पर जब दोनों आपस में मिलती हैं तो परमात्मा के गुणों का प्रवाह आत्मा में इतने अधिक वेग से होता है कि आत्मा के स्वाभाविक निज के गुण तो लुप्त हो जाते हैं और परमात्मा के गुण प्रकट जान पड़ते हैं। वही अभिन्न सम्यन्ध रहस्यवादियों की चरम सीमा है। इसका फल क्या होता है !

—गम्भीर एकांत सत्य का परिचय

—परम शांति की अवतारणा

—जीवन में अनंत शक्ति और चेतना

—प्रेम का अभूत-पूर्व आविर्भाव

—भय और भय.....

—मय, वह भय नहीं जिसमें जीवन की शक्तियों का नाश हो जाता है किंतु वह भय जो आश्चर्य से प्रादुर्भूत होता है और जिसमें प्रेम, भय और आदर की महान शक्तियाँ द्विगु रहती हैं। ऐसी स्थिति में जीवन में व्यापक शक्तियाँ आती हैं और आत्मा इस संघनमय संसार में ऊपर उठकर सब लोक में पहुँच जाती है जहाँ प्रेम का अस्तित्व है और निम्नके कारण आत्मा और परमात्मा में कुछ भिन्नता प्रतीत नहीं होती। अनंत की दिव्य विभूति जीवन का आवश्यक अंग बनाती है और शरीर की सभी शक्तियाँ निरावलंब होकर अपने को अनंत की गोद में फेंक देती हैं।

जिम प्रकार मछलियाँ समुद्र में तैरती हैं, जिस प्रकार पक्षी वायु में भूलते हैं, तेरे आलिंगन से हम विमुख नहीं हो सकते। हम सँस लेते हैं और तू वहाँ वर्तमान है।

इस प्रकार रहस्यवादी देवी शक्ति से युक्त होकर संसार के अन्य मनुष्यों से बहुत ऊपर उठ जाता है। उसका अनुभव भी अधिक विस्तृत और आध्यात्मिक हो जाता है। उसका संसार ही दूसरा हो जाता है और वह किसी दूसरे ही वातावरण में विचरण करने लगता है।

किंतु रहस्यवादों की यह अनुभूति व्यक्तिगत ही समझनी चाहिए। उसका एक कारण है। वह अनुभूति इतनी दिव्य, इतनी अलौकिक होती है कि संसार के शब्दों में उसका स्पष्टीकरण असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। वह कांति दिव्य है, अलौकिक है। हम उसे साधारण श्रौंखों से नहीं देख सकते। यह ऐसा गुलाब है जो किसी बाग में नहीं लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगंध ही पाई जा सकती है। यह ऐसी सरिता है कि उसे हम किसी प्रशांत-वन में नहीं देख सकते

वरन् उसे कल-कल नाद करते हुए ही सुन सकते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि संसार की भाषा इतनी ओछी है कि उनमें हम पूर्ण रीति से रहस्यवाद को अनुभूति प्रकट ही नहीं कर सकते । दूसरी बात यह कि रहस्यवाद की यह भावुक विवेचना समझने की शक्ति भी तो सर्वसाधारण में नहीं है । रहस्यवादी अपने अलौकिक आनंद में विभोर होकर यदि कुछ कहता है तो लोग उसे पागल समझने हैं । साधारण मनुष्यों के विचार इतने उथले हैं कि उनमें रहस्यवाद को अनुभूति समा ही नहीं सकती । इसीलिए 'अलहब्बाज-मंसूर' अपनी अनुभूति का गीत गाते गाते थक गया पर लोग उसे समझ ही नहीं सके । लोगों ने उसे ईश्वरीय सत्ता का विनाश करने वाला समझ कर फाँसी दे दी । इसी लिए रहस्यवादियों को अनेक स्थलों पर चुप रहना पड़ता है । उसका कारण वे यही बतना सकते हैं कि—

‘नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ, आज अनश्वर गीत ।’

—डा० रामकुमार वर्मा

## छायावाद

कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया । रीतिकालीन प्रचलित परम्परा से—जिसमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी—इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नए ढंग से अभिव्यक्ति हुई । ये नवीन

मान आन्तरिक स्वरूप से पुनर्जात थे। आभ्यन्तर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य रूपान्तर आकार में भी कुछ विविचिता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, तथा वाक्य-विन्यास आवश्यक था। हिंदी में नवीन शब्दों की भंगिमादृष्टणीय आभ्यन्तर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी। शब्द-विन्यास में ऐसा पाना चढ़ा कि उसमें एक तरह उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया।

बाह्य उपाधि से दृढ़ कर आन्तरिक की ओर कवि-हर्म प्रेरित हुआ। इस नए प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्द की योजना हुई हिंदी में पहले के कम समझे जाते थे; हिंदी शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीर के शब्द भी उस शब्द-विशेष का नवीन अर्थ सातन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस व्यवहार का बहुत दाय हांता है। अर्थ-बोध व्यवहार पर निर्भर करता है। शब्द शास्त्र में पर्यायवाची तथा अनेकार्थवाची शब्द इसके प्रमाण हैं। इसी अर्थ-चमत्कार का महत्त्व है कि कवि की वाणी में अभिधा से विनच्छेद अर्थ साहित्य में मान्य हुए।

अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अमना स्वतन्त्र लक्ष्य रखता है। भाषा के भीतर छःपा की जगह तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य की संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छिन्न के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता विच्छिन्न, छाया और कान्ति का सृजन करती है। इस वैच्छिन्न का सृजन करने विदग्ध कवि का ही काम है। वैदग्ध्य भगोः में शब्द की वक्रता और अर्थ की वक्रता 'लोकोत्तीर्य' में अवस्थित होती है। यह रम्य-आनन्द-स्वरूपी वक्रता वर्ण से प्रकट रूप में होती है।



कमी-कमी स्वानुभाव संवेदनीय वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए सर्वनामादिकों का सुन्दर प्रयोग इस छायाभयी वक्तता का कारण होता है—‘वे ओलें कुछ कहती हैं।’ किंतु ध्वनिकार ने इसका प्रयोग ध्वनि के भीतर सुन्दरता में किया। यह ध्वनि प्रबन्ध, वाक्य, पद और वर्ण में दोस्त हाती है। केवल अपनी भंगिमा के कारण ‘वे ओलें’ में ‘वे’ एक विचित्र तर्का उत्पन्न कर सकता है। कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा-भूषण की तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण अलंकार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है, किंतु जीवन के भीतर रमणी सुलभ शो की बहिन ही है, घूँट वाली लज्जा नहीं। संस्कृत-साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अनेक लिए अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है।

इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कृष्ट-कला में अधिक महत्त्व था। प्रागल्भ्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की भी थी, किंतु आन्तर अर्थ-नैचित्र्य को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभिव्यक्ति के उदाहरण संस्कृत में प्रचुर हैं। उन्होंने उपमाश्रो में भी आन्तर साक्ष्य लाने का प्रयत्न किया था।

‘निरक्षर मुग्धा’, ‘पृथ्वी गतयौवना’, ‘संवेदन मिवाग्धर’, मेघ के लिए ‘जनपद बहु लोचनैः पीयमानः’ या कामदेव के कुसुम शर के लिए ‘निद्रासुखनोयमायुधं’ ये सब प्रयोग वास्तव सादृश्य से अधिक आत्मसादृश्य की प्रकट करनेवाले हैं। इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ बहुत मिलती हैं। इन अभिव्यक्तियों में जो छाया की रितम्भता है, गहरी है, नई विचित्र है। अलंकार के भीतर आने पर भी ये सब हृदय अधिक हैं।

प्राचीन साहित्य में यह छायावाद जाना स्थान बना चुका है। हिंदी में भी इस तरह के प्रयोग आगम्य हुए तो कुछ लोग धीके-मद्धे, संदेह विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग की मद्दह

करना पड़ी । कहना न होगा कि ये अंभुनिमग आत्मस्पर्श काव्य-जगत् के लिए अत्यन्त आवश्यक थे । काकु या श्लेष की तरह यह भी-भी वक्रोक्ति भी न थी । भाषा से दृष्ट क. भाषा की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी ।

जब 'वहित विकलं कायोन मुञ्चति चेतनम्' की विश्रुता वेदना को चेतन्य के साथ चिरवन्धन में बाँध देती है, तब वह आत्म-स्पर्श की अनुभूति, सूक्ष्म आन्तर भाव का व्यक्त करने व समर्थ होती है । ऐसा छायावाद किसी भाषा के लिए शाय नहीं हो सकता । भाषा अपने सांस्कृतिक सुचारु के साथ इस पद की ओर अग्रसर होती है, उच्चतम साहित्य का स्वागत करने के लिए । हिंदी में आरम्भ के छायावाद ने अपनी भारतीय साहित्यिकता का ही अनुसरण किया है । मुन्तद के शब्दों में 'अतिक्रान्त प्रसिद्ध व्यवहार सरणि' के कारण कुछ लोग इस छायावाद में अस्पष्टवाद का भी रंग देख पाते हैं । हो सकता है कि वहाँ कवि ने अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो ; वहाँ अभिव्यक्ति, विशृङ्खल हो गई हो, शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय ने उसका स्पर्श न हाकर महिष्क ने ही मेल हो गया हो, परन्तु भिद्धान्त में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट, छाया-मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है । हाँ मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है । प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है ; इसलिए प्रकृति काव्यगन, व्यवहार में ले आकर छायावाद का सृष्टि होनी है, यह विद्धान्त भी आमक है । यद्यपि प्रकृति का आलम्बन स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य-धारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता ।

छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की मंजिमा पर अधिक निर्भर करती है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सीन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-धकता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति



रहस्यवादी प्रेम करता है। इसी से रहस्यवादी का मूल प्रिय और प्राप्य है। रहस्यवाद में मनुष्य का रागात्मक पक्ष अधिक विकसित और उत्कृष्ट रहता है।

रहस्यवाद में प्रेम की प्रधानता का यह आशय नहीं है कि इसमें लोभन के अन्य पक्षों का अभाव है। 'सच्ची रहस्यवादिता' का मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को आशिक संतुष्टि से विरोध है। यह कहती है कि परिभाषा, वर्णन और अभिव्यंजना से अधिक (व्यापक) मनुष्य की इच्छा, जीवन और अनुभव हैं। सच्चे रहस्यवाद में केवल 'समाधि' या 'हाल' का धार्मिक भाषादेश नहीं होता। इसमें सामान्यतः एक-दूसरे में पृथक्-समके जानेवाले रागात्मक और बौद्धिक पक्षों में पुनः सामंजस्य स्थापित होता है और मस्तिष्क या बुद्धि द्वारा विभक्त ये दोनों पक्ष फिर एक में मिल जाते हैं। रहस्यवाद में संपूर्ण व्यक्तित्व का संबंध रहता है।

रहस्यवादियों का कहना है कि उस 'परम वषा' की प्राप्ति ऊपरी मस्तिष्क से नहीं हो सकती क्योंकि यह तो लौकिक सत्ता और मेद-भावना में ही लीन रहता है। वे मनुष्य की दूसरी सूक्ष्म शक्ति प्रातिम ज्ञान को और संकेत करते हैं। यह प्रातिम ज्ञान रहस्यवादियों का प्रधान साधन और रहस्यवाद का प्रधान अंग है। साधना के कुछ उपाय—जिनमें ध्यान प्रमुख है—चेतनावस्था में ऐसा परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं कि जिससे यह छोई हुई शक्ति जग पड़ती है। ज्यों-ज्यों इस शक्ति (प्रातिम ज्ञान) का प्रवेश हमारे चेतन जीवन में होता जाता है त्यों-त्यों मनुष्य रहस्यवादी बनता जाता है।

अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक या उल्लेखों (यद्यपि ये अपरिपूर्ण सिद्ध होते हैं) का आभय रहस्यवादी के लिए अनिवार्य होता जाता है। इनके द्वारा अपनी अनुभूति की तीव्रता का प्रकाशन असंभव है। केवल साम्य के सहारे आभास मात्र देकर बातों के लोभ रूप प्रातिम ज्ञान की उद्बुद्ध कर रहस्यवाद के प्रतीक काव्य



प्रच्छन्न और अभ्यन्त का रहनेवा है नहीं 'रहस्यवाद' है । आवरण को निवारण करने की प्रवृत्ति है । उगमियों में उसी 'प्रच्छन्न' को देखने का कुतूहल है । रूप जगत क्या है—मैं ( आत्मा ) क्या हूँ ? 'आत्मा' और 'जगत' का क्या सम्बन्ध है ? जगत' किसकी सृष्टि है ? वह ( सः ) कौन है ? सः, जगत और आत्मा के बीच क्या कोई 'शृंगार' है ? ये प्रश्न हैं जो 'दर्शनो' में अनेक तर्क-वितर्कमय उत्तरों के पड़चान् भी प्रश्न हो गये हुए हैं । उनका निरूपण है ; वह सः ) अनुभव किया जा सकता है—उगका वर्णन नहीं हो सकता । ईसाई दार्शनिक कहते हैं, 'प्रेमिका के उगान भरे बल्लभण का जैसे कोई उन्मत्त प्रेमी आलिंगन करता है और उसमें जो कुछ गीटा गीठा कुछ भीतर ही भीतर घुसने लगता है - कुछ ऐसा ही उसके माजिष्य का अनुभव होता है ।' बौद्ध इस प्रश्न पर मौन धारण कर लेता है ; वेदानी 'नेमि नेति' ( यह नहीं, यह नहीं ) कहकर बक जाता है ।

अद्वैतवादी भी उसको मरने ही में देखता है । इसी से वह कहता है—मोहम्-मैं ही वह हूँ । वह आत्मा में ही परमात्मा का अधिष्ठित देवता है और जगत को मिथ्या समझता है । उसका विश्वास है कि आत्मा पर माया का आवरण पड़ा रहने से हम 'उसके' दर्शन नहीं कर पाते । आवरण को विदीर्य कर ही हम पर उसकी आभा का प्रकाश 'पड़ता है, और हम उसे अपने में अनुभव करने लगते हैं ।

सूफी और अद्वैतवादी ( निगुणवादी ) दोनों ही जगत को मिथ्या मानते हैं ; परन्तु सूफी जगत के रूप में परमात्मा का सत्ता को स्वीकार करता है । उसे वह परमात्मा के विरुद्ध में व्याकुल देवता है । इसी से परमात्मा तक पहुँचने के लिए वह भौतिक वस्तु के प्रति आसक्ति वारण कर प्रेम-विमोह हो जाता है । उसका साधन प्रेम है और साध्य भी प्रेम ।

द्वैतवादी ( सगुणोपासक ) आत्मा ( जीव ) को ब्रह्मा से पृथक् मानता है । वह द्वैतवादी की तरह दोनों को एक नहीं मानता । वह सायुज्य मुक्ति की कामना भी नहीं करता । अपने आराध्य को अपलक आँखों से देखते रहने और उसका सान्निध्य शाश्वत बनाए रखने में ही अपने की कृतकृत्य मानता है । उसे अपना आराध्य ही सब कुछ है और उसके बिना सब कुछ नहीं । वह धार्मिक ग्रंथों में रंजित स्वर्ग की कामना भी नहीं करता ।

सांसारिक संघर्षों से दूर रहकर मनुष्य ऐसी स्थिति में पहुँचना चाहता है, जहाँ केवल आनंद की ही वर्षा होती है ।- जीवन के विविध ताप, दुःख, पिघलकर वह जाते हैं । समनिषदकार कहते हैं—‘यह सृष्टि आनंद से ही उत्पन्न हुई है । आनंद की ओर ही इसकी गति है और आनंद में ही स्थिति ।’

‘दर्शन’ तर्क और ज्ञान से ‘रहस्य’ के समझने का आग्रह करता है, काव्य उसे अपने में आन्ध्रादित कर लेने की व्याकुलता प्रकट करता है । दर्शन ‘चिंतन’ है—विचार है ; कविता अनुभूति है, भाव है । ‘दर्शन’ ‘ससे’ दूर रखकर खुली आँखों से देखने की चेष्टा करता हूँ ; काव्य उसे अपने ही में उतार कर निमोलित नेत्रों से उसका दर्शन करता है । जहाँ ‘रहस्य’ के प्रति हमारा ‘राग’ जाग उठता है, हम ‘उसकी’ ओर अपने को भूलकर खिंचने लगते हैं ; वही काव्य की भूमिका प्रस्तुत हो जाती है । ‘रहस्य’ की ओर विचार-आकर्षण ही रहस्यवादी कविता को जन्म देता है । ‘रहस्य’ जैसा कि अभी तक के विवेचन से स्पष्ट है, उस ‘परोक्ष’ सत्ता को कहते हैं जो हमारी पार्थिव आँखों से ओझल है, परे है । उसी को अनुभव करने, पहचानने की लालक-चाह-रहस्यवादी कविता में दीख पड़ता है । अपनी प्रवृत्ति और विश्वास-भावना के अनुसार एक रहस्यवादी जगत में परोक्ष सत्ता का आभास पाकर उसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर हर्ष पुलक से भर जाता है, दूसरे जगत को

असम मान उससे बिराह हो आने भीतर ही उस गाय के दर्शन कर आत्मविभोर हो जाता है। इस प्रकार के दृष्टा को आत्मवादी या व्यक्तिवादी भी कह सकते हैं, सोसरा किसी व्यक्ति ही को 'सुखका' प्रतीक मानकर उसमें अपनी माननाओं को केंद्रित कर उसी का चालिख्य चाहता है।

इस प्रकार रहस्यवादी अपनी आत्मा के चेतन को भोजने के लिए उन्मुख होता है। स्पृज प्रकृति से समष्टि रूप में चेतना का आरोप कर उसमें अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है और उसे अपना ही संश अनुभव करने लगता है। और यह व्यक्ति ही में परोक्ष चेतन का आरोप कर भी अस्मविस्मृत हो जाता है। प्रत्येक रहस्यवादी के लिए आकर्षण के आधार पर एक हीना आवश्यक नहीं, पर उस आधार में, उस रहस्यमयी परोक्ष वस्तु की अनुभूति में सबका एक हीना निश्चय ही आवश्यक है।

—प्रो० विनय मोहन शर्मा।

छायावाद रहस्य प्रकृति का प्राधान्य है। एक प्रकार से अद्भुत और रहस्य उनके आधार-भूत तत्व हैं। इसका कारण है भौतिकता के निरुद्ध प्रतिवर्तन। द्विवेदी कालीन कवियों की क्रीडा-भूमि उनका निकटवर्ती पार्श्व संसार रह गया था, अतः स्वभावतः ही उनका विरोध करने वाले कवि दूर, नुँवले पक्ष रहस्यमय लोक की ओर बढ़ने लगे। इसके लिये उन्हें कबीर रवींद्र की गीतांजलि, अँगरेजी के भाषयोगी कवि तथा हिंदी के प्राचीन रहस्यवादियों से विशेष मोहसाहन मिला और वे उस अशाव के प्रति जिज्ञासा प्रकट करने लगे। वास्तव में यह प्रतिवर्तन का ही फल था और हमारे भावुक कवि किसी धार्मिक प्रेरणा से इस ओर इतने आकृष्ट नहीं हुए थे जितने की अपनी भावुकता और कल्पना के



लिए एक विस्तृत क्षेत्र पा जाने के कारण आधुनिक छायावाद को विशेष आध्यात्मिक दृष्टि से देखना उचित न होगा क्योंकि एक तो यह युग ही धार्मिकता का नहीं है, दूसरे हमारे प्रतिनिधि कवियों का जीवन भी आधकांश में पाश्चात्य प्रभावों से निर्मित है। केवल काव्य-वस्तु के रूप में उन्होंने इस काव्य-जिज्ञासा और उससे संबंध रखनेवाले भिन्न-भिन्न प्रश्नों को अपनाया है। हाँ, अपनी विकसित चिंतनशक्ति और विस्तृत दार्शनिक अध्ययन के द्वारा उसको पचाने का सफल प्रयत्न अवश्य किया है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने बौद्ध दर्शन, एवं कविवर प्रसादजी व निरालाजी ने भारतीय अद्वैतवाद का अच्छा मनन किया है। फलतः उनके काव्यों में मायुक्तता और दार्शनिकता का सुंदर गमन्य है। कविवर पंत ने भी पौराण्य और पाश्चात्य दर्शन के अध्ययन द्वारा कुछ मौलिक सिद्धांतों की सृष्टि और उनका सुंदर काव्यमय प्रयोग किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे कवियों का रहस्यवाद उनकी आत्मानुभूति का फल तो किसी प्रकार नहीं हो सकता। हाँ, रहस्य-प्रवृत्ति के कारण उनकी वृत्ति इसमें काफी रमी और कहरना एवं चिंतन-शक्ति के बल पर उन्होंने इन रहस्यमय प्रश्नों पर काव्य का नुनहरा आवरण बड़े सुचारु रूप से चढ़ाया। कुछ कवियों की कृतियों इसका आशय भी है। जैसे कविवर मैथिलीशरण की 'भंकार'—उसमें धार्मिकता न देखना कवि के व्यक्तित्व के प्रति अन्याय होगा। एक बात अवश्य है कि भंकार का कवि भक्ति-मय का गिरा होने के कारण रहस्यवादी रचनाएँ करने में बहुत अधिक सफल नहीं हो सका।

—प्रो० नगेंद्र

( ४ )

कवि के गूढ़ आध्यात्मिक भावों के प्रच्छन्न पनाह को छायावाद कहने हैं। मनुष्य यह अभिज्ञ पनाह इनका अधिक प्रच्छन्न न हो कि पढ़नेवाले

की समझ ही में न आवे । छायावाद कम-हीन कहना-समूह की नहीं कहते । किसी भी साहित्य में छायावाद का स्थान सबसे अंत में आता है । सृष्टि-सौंदर्य का निरीक्षण करना तो कवि का सबसे प्रथम कर्तव्य है, द्वितीय स्थान सांसारिक वस्तुओं का और तृतीय आध्यात्मिक विषयों का हुआ करता है । छायावाद का स्थान तो इन सबके भा पीछे आता है । यही कम ठाक भी है । शैली ने कहा है कि अन्त में सभी नास्तिक हो जाते हैं । इन शब्दों में सत्य कूट-कूट भर भरा है । यह पथ हमें मन और बुद्धि के परे एक अशांत प्रदेश में ले जाता है । यद्यपि यह प्रदेश मेघ-च्छन्न होता है तथापि उस तर विद्युत्प्रकाश की अपूर्व छटा होती है । उसके दर्शन से जा आनंद प्राप्त होता है यह अनिर्वचनीय है । छायावाद कविताकला का एक अपूर्व निदर्शन है, कवि की लेखनी का चातुर्य और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चमत्कार छायावाद ही में देख पड़ता है । यह आंतरिक गूढ़ भावों के प्रकाशन का एक विलक्षण शैली है । हिंदी में छायावाद कोई नयी विषय नहीं है । कबीर, सूर तथा अन्य भक्त कवियों ने इस पर बहुत कुछ लिखा है । मध्यकालीन कवियों ने जो प्रायः शृंगार के ही उपासक थे इसका प्रयोग करना छोड़ दिया था । आधुनिक काल में इसका पुनर्जन्म हो रहा है । परंतु आजकल का छायावाद पहले से बहुत भिन्न है । ऐसे तो इसका प्रथम खांत अँगरेजी-साहित्य है जहाँ से यह बँगला भा हल्ब में आया और इसकी कुछ-कुछ छाया हिंदी के आधुनिक छायावाद में भी देख पड़ी । परंतु तुलनात्मक अध्ययन करने से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि हमारा आजकल का छायावाद हमारे कवियों का स्वाधन उपज है और उनकी कल्पना, उनकी भाव-व्यंजना उनकी कौशल पूर्ण रूप से उन्हीं का है । केवल थोड़ी समानता यह नहीं सिद्ध कर सकती कि यह कहीं अन्यत्र से लिया गया है ।

हिंदी कविता का परिष्करण उस सीमा तक हो गया था कि कवि अपनी मौलिक भावनाओं को आत्मा के रहस्यों की ओर प्रेरित कर दे। वस्तु स्थिति को गौण मानकर भावनाओं के अंतरतम प्रदेश का अन्वेषण कवि की प्रतिभा का आवश्यक अंग बन गया। इसी भावना-जगत का स्पष्टीकरण नवीन धारा के कवि प्रसाद, निराला और पंत की रचनाओं में मिला। प्रसाद ने 'आँसू' में प्रारंभ कर 'कामायनी' में हृदय की प्रवृत्तियों का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण किया। उसमें प्रसादजी के अध्ययन का गांधीय रूप स्पष्ट रूप से है। जीवन के इसी गांधीय में रहस्यवाद का सूत्रपात हुआ है जिसकी सर्व-प्रथम अभिव्यक्ति प्रसादजी की रचनाओं में हुई। ओनिराला ने इसी मनोवैज्ञानिक तत्व को दर्शन की जटिल शृंखलाओं में कमकर भी कलत्मक रूप में हमारे समाने रखवा। यद्यपि मुक्त-वृत्त की असंयत पदावली हिंदी को संगीत प्रिय परंपरा को ग्राह्य नहीं हो सकी तथापि जिस उन्मेष और आवेग में निराला ने काव्य की रेखा खींची वह हिंदी में अभिट होकर रह गई। पंडित सुमित्रानंदन ने निराला के विपरीत कविता में उत्कृष्ट संगीत की सृष्टि की। उन्होंने भावों को जिस कामल रूप में देखा, उसी कोमल रूप में उनके शब्द भी सुसज्जित हुए। पंत की भाव-धारा में संसार की समस्त अभिव्यक्ति बड़े मोहक रूप में उपस्थित हुई। पंत में प्रसाद और निराला का दर्शन भी संगीत का रूप रखकर आया। पंत में यदि कोई दोष है तो वह यह कि उनमें जीवन का आवेग नहीं है। उनमें जीवन की वह कोमलता है जो पुरुष में शृंगार को भावना लिए हुए है। इसमें कुछ संदेह नहीं कि उन्होंने इधर जीवन की वास्तविकता को भी कविता की रेखाओं से घोंवने का प्रयत्न किया है। 'नारी' शीर्षक रचना में उन्होंने यथार्थवाद को साम्यवाद के रूप में चित्रित किया है, किंतु इस प्रकार की रचना में काव्य का वह रूप प्रस्फुटित नहीं हुआ जो आगर रह

मके । उनमें न तो संकेत ही है, और न व्यंजना । इन दोनों के बिना कविता की श्वनि समय को दूर दिशाओं में जाने में असमर्थ है । अतः भौतिकवाद तभी कविता का अंग हो सकता है जब उसमें चित्रित भावनाओं की व्यंगन-त्मक श्वनि हो । पत का नवीन दशा में प्रवास मले ही श्लाघ्य हो, लेकिन कविता के दृष्टिकोण से अभी उसमें परिष्करण नहीं हुआ । प्रवास, निगमन और उन का भावनाओं का संकेत पाकर नवीन धारा के उत्तरकान्तिन नवन कवि धामदादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा और भगवतीचरण वर्मा, जीवन के अतर्हित रहस्यों को उद्घाटित करने में समर्थ हुए । दोनों का भाव-जगत् स्थूल संसार में भी सूक्ष्म प्रवृत्तियों को खोजने में समर्थ हो सका, यद्यपि दोनों को गुंली भिन्न-भिन्न मार्ग के अनुसरण में वलग्न हुई । श्रीमती महादेवी ने पीड़ा की परिधि से अपने में समस्त भाव-जगत को पसाया । उन्होंने जीवन के विनाश को जीवन का एक कर्म मानते हुए उस स्वीकार किया और उसी में आत्मा का निर्वाण माना । अपने को केंद्र बिंदु मानते हुए महादेवी ने अपने आराध्य का परिधि के चारों ओर खोज लिया है । उन्होंने अपने दोषों के आवरण में ही जीवन को पकड़-समान करने के उपकरण प्राप्त किए हैं । जनन को अनिवार्य मानकर उन्होंने उसी शक्ति को छलना को है । श्रीरामकुमार वर्मा ने संसार की सरहीनता में अपने आराध्य को और भी स्पष्ट पाया है । राम-कुमार में रहस्यवाद का भावना प्रसर है । संकेत उनका साधन है । संसार के गिरने में उन्हें क्षम है, रूढ़ के विनाश में उन्हें कष्ट है, लेकिन उसके खंडहरों में वे अपने आध्यात्मिक जीवन का निर्माण करना चाहते हैं । वस्तुतः महादेवी और रामकुमार के दृष्टिकोण में अधिक भेद नहीं है । दोनों का आदर्श एक ही है, पर महादेवी ने पीड़ा और प्रेम प्रदान माना है, रामकुमार ने कल्याण और रूप को । महादेवी ने अपने आराध्य को स्पष्ट पाया है, रामकुमार ने संकेत में । श्रीभगवतीचरण वर्मा ने जीवन का सूक्ष्म तत्त्व जीवन के उद्देग में

प्राप्त किया है। वे वस्तुवाद के कायल हैं और समस्त भावधेग से वे संसार के विषय छींचकर उनसे निष्कर्ष निकालना चाहते हैं। भगवती-चरण में संकेत बिलकुल नहीं है और न आध्यात्मिक ध्वनि है। वे स्वप्नवादी हैं। और सम्पूर्ण बल से संसार को समेट कर उसे ऊँच तलों में केंद्रोभूत कर देते हैं। भगवतीचरण वर्ण का आवेश ही उनके काव्य का जीवन है। इन तीनों कवियों के बाद इस शैली के यत्नेक कवि हैं जिन्होंने पूर्वोक्त कवियों के सिद्धांतों को विविध दृष्टि-कोणों से पुनः किया है।

—डा० धीरेंद्र वर्मा

मे ईश्वरीय अलौकिकता की भव्य महानता सम्बन्धी अनुभूति मानव की संकुचित वृत्तियों का लोप कर देती है। और तब देश, समाज और भर्म के संकुचित क्षेत्रों और विचारों में बहुत ऊपर उठ रहस्यवादी भावना के ऐसे लोक में पहुँचता है जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, वासना, भोग आदि असंतुष्टकारी और क्षयप्ररोजक वृत्तियाँ फटक नहीं सकती। इस समय मानवमन परम प्रफुल्लित हो जाता है। तन्मयता, अथवा लीनता की यह स्थिति अति आनन्ददायिनी होती है। अस्तु।

परम शक्ति की अंतुर्दिक व्यक्त दिव्य महत्ता से चमत्कृत और आनन्द-विभोर जीवात्मा की अनुभूति की उस व्यजना को रहस्यवाद कहते हैं जिसमें 'ग्रने' मूल कारण से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने की महत् भावना निहित हो। जीवात्मा की सजग और सभाव वृत्ति चारों ओर फैले हुए अनन्त और अलौकिक सौंदर्य का सपेक्ष निरोक्षण करती है। हृदय प्रसन्नता से नाच उठता है, अलौकिक आनन्द-सागर में मग्न होने लगता है। जीवात्मा जैसे सोचती है— जिस परम सत्ता की सृष्टि इतनी सुन्दर, इतनी विशाल, इतनी भव्य, इतनी रम्य है, स्वयं वह उसका रूप, उसकी शक्ति कितनी महत् होगी ! शरीर और मन की सभी चेष्टाएँ और वृत्तियाँ जब सुख, संतोष, और शांति के लिए लालायित हैं। तब उस परम रमणीय सृष्टि के अलौकिक कर्त्ता से बढ़कर सुखद, संतोषप्रद और शांतिदायी कौन हाँगा ? क्यों न इसी से आरना अटूट और निश्चल सम्बन्ध स्थापित किया जाय ! इस लटकत सद्भावना की अकृत्रिमता जीवात्मा को विशेष मत्त प्रदान करती है। परम दिव्य और अलौकिक सत्ता के आगमन के सम्बन्ध का यह प्रथम चरण है। अतः परम परम अद्वितीय आनन्द केन्द्र जीवात्मा अन्तर्मुख हो जाती है, उसे अपने अन्तर्गत अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता। उसका ही प्रियत्व के 'मैं' से नीन हो जाता है। उसी तब-चेतन प्रकृति 'तब'।

के रम्य रूप का दर्शन कराती प्रतीत होती है, जीव-रत्न, पशु-पक्षी  
उभी प्राणी चरम सत्तामय प्रतीत होते हैं। लीनता की इस स्थिति  
में अभिव्यंजित विचार रहस्यवाद के उदाहरण बने जा सकते हैं।

दिव्य सत्ता में लीनता का प्रधान लक्षण है जीवात्मा का अपने  
अस्तित्व की स्वतंत्रता को भूल जाना। जीव में द्वैत भावना के बने  
रहने तक निजता का प्रदायिकता एकदेशता जैसे संकुचित भावनाएँ  
घर किए रहती हैं; इनके पोषण और प्रचार में उसे आनन्द भी  
मिलता है। शारीरिक और इंद्रिय सुख की प्रधानता के प्रति अनुरक्ति  
की भावना का उसमें जड़ता नहीं होता और भौतिकता-वादिता पर  
पूर्ण विजय भी उसे नहीं मिलती। परन्तु जिस क्षण अलौकिक सत्ता  
से शांति सम्बन्ध करने की लालसा प्राणी की अन्य वृत्तियों पर  
अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगती है उसी पल से वह जगत की  
स्थूलता से परे उसमें अंतर्हित परम शक्ति के देह प्रयमान अंश का  
दर्शन करने की दिव्य अतर्हण जीवात्मा को मिला जाती है जो  
सामाजिकता और लौकिकता की भावनाओं से बहुत ऊपर उठ,  
निजता और अदम्य धी वासना का अनायास त्याग कर देती। इस  
स्थिति से पूर्व तक इंद्रियों निर्जो कार्यों के सम्पादन द्वारा शारीरिक  
धर्म का पालन करती रहती है और इस प्रकार मानसिक शक्ति के  
पूर्ण नियंत्रण में उन्हें रहना पड़ता है। अलौकिक सत्ता से सम्बन्ध  
की दिव्य अनुभूति का आभाव होते ही मानसिक नियंत्रण का बंधन  
शिथिल होने लगता है, इंद्रियों को निजी चेतन शक्ति क्रमशः कम  
होती जाती है। अन्त में पूर्णानुभूति की दशा में पहुँचने पर वे  
ज्ञानशून्यता के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं; अपने किसी कर्तव्य का  
स्वतंत्र ज्ञान उन्हें नहीं रह जाता। 'मेरा-तेरा' की मोह-ममता से तब  
मुक्ति पाकर जीवात्मा ब्रह्मानन्द का अनुभव करती है और हृदय दिव्य  
प्रेममय हो जाता है।

यह दुर्लभ रहस्यवादियों के व्यक्तिगत अनुभव की बात। पश्चात्,

इस अनुभूति की व्यंजना के लिए प्रस्तुत होने पर कठिनाई यह स्पष्ट होती है कि वर्णन करते समय कवि स्वयं भावलीनता की मूल स्थिति में नहीं होता। अतः तन्मयता का मूलानन्द तो अव्यक्त और रहस्यमय ही रहता है और कल्पना के भावमय सहयोग द्वारा उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति से ही कवि को सतुष्ट होना पड़ता है। इस कविता की विशेषता यह है कि पार्थिव वस्तुओं का वर्णन रचयिता का उद्देश्य न होने के कारण सूक्ष्म और अनूर्त उगम-उत्थानों के सहारे कवि-कल्पना को स्वच्छन्द उड़ान का परिचय इसमें मिलता है। रहस्यवादी कविता की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है।

प्रकृति के परम रम्य रूपों के प्रति प्रेममय आकर्षण का अनुभव करने पर कवि की सहृदयता सजग हो जाती है। उसका आंतरिक अनुभूति प्रत्येक प्राकृतिक क्रिया-कलाप में ईश्वरत्व सत्ता का आनन्ददायक अनुभव करती है। विश्व के समस्त व्यापारों को सचा-क-शक्ति का परिचय पाने के लिए जो जीव आदि काल से निकल है, उसका परिचय पाने और साक्षात्कार करने के लिए न जाने कब से उतावला है, इन प्राकृतिक क्रियाओं को नियमितता, निरंतरता और व्यापकता से चमत्कृत होकर ईश्वरीय अस्तित्व के संबंध में आनन्द कल्पना को इन प्रमाणों द्वारा सत्य सिद्ध होते देख अब प्रकुलित हो जाता है। अनेक रूपों में प्रयत्न करने पर भी उस सत्ता का दर्शन न कर सकने पर सावकों का एक वर्ग जिसे अज्ञेय, अरुण, अनम, अनादि, अव्यक्त आदि कहकर आने को संतोषमय सुझावा देना पड़ा है, उसी के अस्तित्व को पूर्णतः स्वीकार, और सृष्टि की समस्त सुंदरता, शक्ति और चेतनता का आदि स्रोत मान दूसरे वर्ग ने रम्य साकार मूर्तियाँ निर्मित कीं। प्रथम वर्ग गंभीर दार्शनिकों, वेदांतियों और जानियों का है, और द्वितीय सहज-सरल स्वभाववाले भक्तों का जो आनन्दों की शुद्धता और गीरसता की उपेक्षा कर आसामय और विश्वासवादियों अर्थात् सप्रेम आनन्दों है, इन दोनों वर्गों में प्रायः



सैद्धांतिक विरोध रहता है । इनका गन्धर्वनी वर्ग है रहस्यवादियों का जिन्हें हम शब्दालु दार्शनिक कह सकते हैं ।

जड़-चेतनमय विश्व में प्रकृति ने मासक-मात्र का संगठन पार्थिव-आधारिण दोनों परमाणुओं से किया है । स्थूलता और सूक्ष्मता दोनों ही उनके निर्माण के लिए प्रयुक्त हैं । प्रथम से आशय बाह्यकार—ज्ञान और कर्मेन्द्रिय से युक्त—‘अस्थि चरममय देह’ से है और द्वितीय में तात्पर्य अंतर्जगत से । इस प्रकार स्थूलता दृश्यमान बाह्य जगत का अंश है तो सूक्ष्मता अदृश्य और अव्यक्त-का । मनुष्य की ज्ञान और ब्रह्म में द्वयोः शैशव से ही पार्थिवता के प्रति उदासीनता दिखाना आरंभ करें, ऐसा तो सधारणतः होता नहीं; सहज और स्वाभाविक यही है कि आरंभ में तो जगत के प्रति उसमें आसक्ति का जन्म हो, और अनेक चलकर जीवन के सुखमय क्षणों में उसकी लुभावनी और रुचिकर योजनाएँ, कल्पनाएँ और आशाएँ असंभावित आघातों से चूर-चूर हों जिसके फलस्वरूप विश्व-नियंता की सत्ता का लोहा मानन को वह विवश हो जाय । पारांश यह कि जीवन के घात-प्रतिघात और घटनाओं के उत्थान-स्तन व्यक्ति की चेतना को पार्थिवता की ओर से उदासीन करके तब अंतर्मुखी बना देते हैं, तभी रहस्यवादी रचनाओं को सृष्टि होती है ।

—प्रेमनारायण टंडन

## विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ का प्रकाशन

साहित्यिक पारिभाषिक शब्दावली—GLOSSARY  
OF LITERARY TERMS—लगभग चालीस सौ ऐसे  
पारिभाषिक अंग्रेजी हिंदी शब्दों का सकलन जिनका प्रयोग कविता  
कहानो, नाटक चयन्यास, कला, समालोचना, व्याकरण, भाषा-विज्ञान  
में आवश्यक होता है। मू० ४॥) अपने ढंग का सर्वप्रथम प्रकाशन।

हिंदी रचना और उसके अङ्ग—मू० २॥) तीसरा संस्करण।  
बवाई विद्यापीठ की 'उत्तमा' और 'हिंदी-भाषा-रत्न' तथा ज्ञानलता  
महल द्वारा संचालित 'भा.तीय विद्यापीठ' की राष्ट्रभाषा रत्न परीक्षाओं  
के लिए स्वीकृत। प्रारम्भिक भाषा-ज्ञान, व्याकरण-सार, हिंदी-रचना-  
सम्बन्धी ज्ञान, नमूने के लगभग ६० लेख, ५० निबंधों की रूपरेखाएँ,  
अपठित और अनुवाद, पत्र-लेखन-कला, काव्य-रचना, छंद और  
अलंकार ज्ञान आदि विषय हैं। निबंधकी सुंदर पुस्तक है।

रहस्यवाद और हिंदी कविता मू० १॥) रहस्यवाद तथा  
छायावाद-संबन्धी प्रतिष्ठित विद्वानों के सुंदर लेखों का सर्वप्रथम संग्रह।  
नया संस्करण अभी अभी छपा है।

चंद्रगुप्तः एक अध्ययन, अज्ञानशत्रुः एक अध्ययन, स्कंदगुप्तः  
एक अध्ययन—प्रत्येक का मू० १॥) ध्रुवस्वामिनीः एक अध्ययन—  
मू० १) स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों का आलोचनात्मक  
अध्ययन समस्त भारत में प्रचलित पुस्तकें हैं।

हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—बंबई हिंदी विद्यापीठ तथा भारतीय विद्यापीठ द्वारा संचालित परीक्षाओं के लिए स्वीकृत। इसमें हिंदी भाषा, कविता, गद्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध और समालोचना का सरल इतिहास है। मूल्य ॥=॥।

सरल हिंदी शिक्षा—उर्दू जाननेवालों को हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि सिखानेवाली बहुत सुंदर पुस्तक। इसमें सारे नियम और मुख्य मुख्य बातें हिंदी और उर्दू में नोट-रूप में लिखी हैं।  
बंबई हिंदी विद्यापीठ द्वारा स्वीकृत। मूल्य ॥=॥।

प्रेमचंद : कृतियाँ और कला—प्रेमचंद साहित्य और कला पर लिखे हुए प्रतिष्ठित विद्वानों के विद्वत्पूर्ण लेखों का संकलन। हिंदी प्रचार सभा मद्रास द्वारा स्वीकृत। दूसरा संस्करण। मूल्य २।

चित्रण—लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के लेखक रत्ना० भगवत् मिश्र पा० एन० डी० का सुंदर कवितासंग्रह—मूल्य १।

हृदय ध्वनि—भावपूर्ण और अनुभूतिप्रधान रचनाओं का सुंदर संकलन। ज्योतिष-प्रसन्न कवि के मर्मस्पर्शी विचार। मू० १।

साँगादान—तीन एकांकी नाटक जिनका संबंध माननीय श्री नेताजी से है। प्रगट्ट दंग का हिंदी में सर्वप्रथम रचना है। मूल्य ॥=॥।

रात की रानी—हृदय का स्पर्श करनेवाली चुनी हुई पंद्रह छोटी, सुसज्जित और कलापूर्ण कहानियाँ। मू० २।

संकलन—तीन सामयिक नाटकों का सुंदर संकलन। मू० १।

प्रेरणा—पाँच एकांकी नाटक। युक्तप्रान्त के शिक्षा-प्रसार-विभाग द्वारा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत। दूसरा संस्करण। मू० ॥॥।

कर्म गंध—तीन सुसज्जित एकांकियों का सुंदर संकलन। मू० १।

तुलसी के राम—महाकवि के समस्त ग्रंथों में बिखरे हुए विचारों के आभार पर श्री रामचंद्र के चरित्र की मुख्य मुख्य बातें। मू० १।

धाम्य और विनाद—हृदयरस के लेखों का गोचर संकलन। मू० ॥॥।

रेखाचित्र--हिंदू नारी, हिंदी लेखक, भैया साहब, अफसर आदि  
मार्मिक रेखाचित्रों का संकलन । मू० ॥८॥

हमारे अमर नायक--संस्कृत क शकुंतला, रघुवंश, उत्तरराम-  
चरित, कादंबरी, नागानंद तथा मृच्छकटिक और हिंदी के सत्यहरिश्चंद्र  
नामक ग्रंथों के नायकों का रोचक चरित्रचित्रण । मू० ॥१॥

### विद्यामंदिर द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

प्रभाद जी के तीन नाटक--मू० १॥ १॥ अद्वैतगुप्त, चंद्रगुप्त और  
अज्ञानशत्रु के अध्ययनों का संक्षिप्त संस्करण ।

कामायनी-मीमांसा--मू० ॥३॥ । साकेत-समीक्षा--मू० २॥॥  
'कामायनी' और 'साकेत-संबंधी' प्रनिष्ठित विद्वानों के आलोचनात्मक  
लेखों का तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयोगी संकलन ।

साहित्य परिचय--मू० २॥॥ आलोचनात्मक लेखों का संकलन ।  
गोपीविरह और भँवरगीत--मू० २॥॥ सूर के १५१ चुने हुए  
पदों का सटिपाणी संकलन, ८० पृष्ठों की आलोचनात्मक भूमिका ।

सूर : जीवनी और ग्रंथ--मू० ॥१॥ आलोचनात्मक ग्रंथ ।

पद्मवती समय--मू० १॥ पृथ्वीराजरासो के पद्मावती समय का  
सुसंगत और सटिपाणी संस्करण, आलोचनात्मक भूमिका भी है ।

नवकथा मंजरी--नौ पद्यबद्ध कहानियों का संकलन । मू० ॥१॥

प्रेमचंद और प्राम-समस्या--आगरा विश्वविद्यालय द्वारा  
पी० ए० के लिए स्वीकृत । नया संस्करण अभी छपा है । मू० १॥

द्विवेदीमीमांसा--पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की हिंदी-सेवा का  
आलोचनात्मक अध्ययन । अपने विषय की एक ही पुस्तक है । मू० २॥

हिंदी साहित्य निर्माता--मू० १॥ सातवों संस्करण समाप्त । यू०  
पी० की हाईस्कूल तथा दिरुची और राजपुताने की इटर परीक्षाओं के  
लिए स्वीकृत । ३०,००० से ज्यादा बिक चुकी है । चुने हुए चालीस  
कवियों और लेखकों की भाषा-शैली, विषय, आदि की आलोचना ।

साहित्यकों के उस्मरण--मू० १॥ तीसरा संस्करण । यू० पी०

को राष्ट्र स्कूल परीक्षा के लिए स्वीकृत भी और विद्यार्थी ने पुस्तकालय के लिए स्वीकृत है। बीस प्रमुख लेखकों के सम्बन्ध सम्बरण है।

एगारे गद्य-निर्माता—मू० २) चौथा संस्करण। मू० पी० दिल्ली. रामपूताना और मद्रास की कई प्रगल्भों के लिए स्वीकृत है प्रसिद्ध लेखकों की हिंदी-सेवा और भाषा-शैली को आलोचना है।

हिंदी साहित्य का छात्रोपयोगी इतिहास—मू० २॥) इंग्लिश गिनती हिंदी के श्रेष्ठ सन्निहित इतिहासों में है। नया संस्करण छपा है।

प्रताप समीक्षा—मू० २) पंडित प्रतापनारायण मिश्र के चुने हुए निबंधों के साथ उनकी भाषा-शैली आदि की विशद आलोचना है।

साहित्यांगों का विकास—मू० १) हिंदी भाषा, कविता, गद्य कहानी, निबंध, समालोचना, गद्यकाव्य, नाटक आदि का विकास।

बालोपयोगी सुंदर-सचित्र पुस्तकें—गोंधीजी से क्या सीखें ?। चौपट चौधरी ।) अर्जुन के युद्ध ।) अर्जुन की स्वर्गयात्रा ।) भा का व्याह ।) मरुहें पंडित ।) रचना बोध ।) अमर नायक ।) निबंधों की रूपरेखाएँ ।) बाँके खिलाड़ी ।) हँसी का फुहारा राबिसन क्रूसो ।) गोबर चीवे ।) जादूगर का बदला ।) राजवक्त्रसिंह ।) रिक्शा की सवारी ।) सौर का व्याह ।) दो देहाती ।) प कहानियाँ ।) भौगोलिक कहानियाँ ।) नवाब छँछूदरअली ।) किर की अम्मा ।) दो वीर बच्चे ।)

होनहार—बालक बालिकाओं के लिये उपयोगी मासिक-वार्षिक मूल्य २) नमूना ।)

पुस्तकें मँगाने के नियम

जो पुस्तकें मँगानी हों उनके नाम कार्ड पर लिखकर मेज दीजिए साथ में एक रुपए का मनीआर्डर भेजिए । ५) से कम के आर्डर एक आना रुपया, ५) से २०) तक के आर्डर पर दो आना रु २०) से अधिक के आर्डर पर चार आना रुपया कमीशन दिया जाय व्यवस्थापक, विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

